अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ का साप्ताहिक मुखपत्र

भूदान-यज्ञ

भूदान-यज्ञ मूलक ग्रामोद्योग प्रधान अहिंसक क्रान्ति का सन्देशवाहक

वार्षिक मूल्य ६) ■ सम्पादक : धीरेन्द्र मजूमदार ■ एक प्रति २ आना

वर्ष-३, अंक-१३ ■ राजघाट, काशी ■ शुक्रवार, २८ दिसंबर, '५६

मल हटाते ही प्रकाश

ईश्वर का रूप हमारे हृदय में है। लेकिन वहाँ लोभ, क्रोध, मत्सर आदि दोष हैं, जिनके कारण भगवान् ढँक जाते हैं। काम, क्रोध, लोभ को हटायेंगे, तो यह रूप दीख पड़ेगा। अंदर एक ज्योति जलती है। वह ढँक गयी है। इसलिए हम मंदिर में देखने जाते हैं। वहाँ तो पत्थर की मूर्ति होती है, जो किसी कारीगर ने बनायी है। सारी दुनिया को बनाने वाला वह ईश्वर नहीं है, परंतु वैसी श्रद्धा होती है। हमारे सामने जो रूप प्रकट हुए हैं, वे वास्तव में ईश्वर के रूप हैं, उसके लिए श्रद्धा का सवाल ही नहीं आता है। शिव बनने के लिए जो देरी है, वह चित्त के मल दूर हटाने की है। चित्त के मल जब दूर जाते हैं, तब हम ही शिव भगवान् हैं! तब तक हम मनुष्य हैं। ये सारे जब अपने चित्त का मैल हटायेंगे, तब शिव बन जायेंगे। सुन्दर लालटेन है, परंतु उसकी काँच काली-काली हो, तो अंदर की ज्योति स्पष्ट दिखायी नहीं देती है और स्वच्छ प्रकाश नहीं पड़ता। लालटेन का काला काँच साफ करते ही स्वच्छ प्रकाश होगा, अंदर की ज्योति दीख पड़ेगी।

—विनोबा

ग्राम-समाज बनाने का साधन : ग्रामदान

(विनोबा)

इस गाँव के कुछ हरिजन भाई आज हमारे पास आये थे और वे सरकार से कुछ जमीन की माँग करते थे। हमें बहुत आश्चर्य होता है कि साढ़े पाँच साल के भूदान के काम के बाद भी लोग सरकार की तरफ ताकते रहते हैं। जब लोगों की शक्ति बनेगी, तभी देश का काम होगा। अपने भाइयों के लिए अपना कर्तव्य है, ऐसी भावना समाज में निर्माण होनी चाहिए। इसलिए हृदय-परिवर्तन करना होगा। बिना हृदय-परिवर्तन के देश में चैतन्य नहीं आयेगा। सब लोग मिल कर एक परिवार के समान रहने लगेंगे, तभी हिन्दुस्तान में समाज बनेगा। आज तो समाज ही नहीं बना है। लोग अलग-अलग जातियों में बँटे हैं। जाति के अलावा धर्म के भी भेद हैं। कुछ मालिक हैं, तो कुछ मजदूर। किसीके पास जमीन है, तो किसीके पास नहीं है। इस तरह भेदों से सारा समाज टुकड़े-टुकड़े हो गया है। समाज की ताकत ही नहीं बन रही है। जब समाज ही नहीं बन रहा है, तब समाज-सेवा क्या होगी? इसलिए हमें पहली बात तो यह करनी होगी कि समाज बनायें।

बहुतों को आश्चर्य होता होगा कि हिंदुस्तान में हजारों वर्षों से जनता काम करती आयी है और यह शख्स हमको कहता है कि यहाँ समाज है ही नहीं! यह क्या बात है? दोनों बातें सही है। हिंदुस्तानमें दस हजार साल से पुरानी व्यवस्था चली आ रही है, यह भी सही है और आज भारत में समाज मौजूद नहीं है, यह भी सही है। जो है, सो परिवार है, समाज नहीं है। कुटुम्ब की कुछ सेवा चलती है, परन्तु उससे अधिक समाज की भावना अभी लोगों में आयी नहीं है। कुछ धर्मपुरुष और राजपुरुष समाज-सेवा के काम करते हैं, परन्तु उनके अलावा आम समाज में यह भाव नहीं है कि हम समाज की सेवा करें। भूमिहीनों और भूमिवानों के बीच जब प्रेम बनेगा, तभी समाज बनेगा। समाज बनाने का सबसे बढ़िया तरीका आज ग्रामदान का है।

ग्रामदान में तीन विचार, तीन कार्य

ग्रामदान एक अत्यंत परिशुद्ध धर्म-विचार है। हम यह भी कहना चाहते हैं कि ग्रामदान एक अत्यंत आधुनिक अर्थशास्त्रीय और परिशुद्ध वैज्ञानिक विचार है। याने इसमें धर्म-विचार, अर्थ-विचार और विज्ञान-विचार, तीनों इकट्ठे हुए हैं। तीनों विचारों की कसौटी पर ग्रामदान का विचार अच्छी तरह से खरा उतरता है।

धर्म-विचार करुणा सिखाता है, अर्थ-विचार अर्थोत्पादन बढ़ाने की बात सिखाता है और विज्ञान बताता है कि सहयोग से ही शक्ति पैदा होती है। विज्ञान शक्ति की शोध करता है, अर्थशास्त्र संपत्ति की शोध करता है। धर्म शुद्धि की शोध करता है। और ये तीनों कार्य ग्रामदान में सधते हैं।

कोडुविलारम, मदुरा, १८-१२-'५६ —विनोबा

ग्रामदान के लाभ

आज एक गाँव के कुछ लोग आये थे। वे सोचते थे कि ग्रामदान किया जाय। हमें यह अच्छा लगता है कि वे विचार करते हैं। वे सोचते हैं कि ग्रामदान से क्या-क्या लाभ होगा। ग्रामदान में लाभ तो अनेक हैं। सबसे बड़ा लाभ यह है कि उससे गाँव में समाज बनेगा। मान लीजिये कि ४० घर का एक गाँव है, उसमें दस घर के पास जमीन है। उतनी जमीन गाँव के लिए नाकाफी है। बाकी के लोग मजदूरी करते हैं, कभी फाका करते हैं, किसी तरह निर्वाह कर लेते हैं। अब मान लीजिये कि उन दस जमीन-मालिकों ने अपनी सारी जमीन गाँव को दे दी, तो क्या उतने से गाँव सुखी होगा? क्या गाँव की आमदनी बढ़ेगी? इस तरह सोचने का ढंग ही गलत है। सोचना यह चाहिए कि अगर हम दस लोग अपनी जमीन गाँवको दे देते हैं, तो हम गाँव के साथ रहेंगे। आज तो किसीको खाना नहीं मिलता है, तो किसीको फाका करना पड़ता है और हम अपना खाते हैं। ग्रामदान के बाद हमको भी फाका करने का मौका मिलेगा। अगर खायेंगे, तो सब मिल कर खायेंगे, नहीं तो कोई नहीं खायेगा। इसीमें मनुष्य की ताकत है। लोग जान-बूझ कर रामनवमी का, महाशिवरात्रि का, रमजान का फाका करते हैं। घर में खाना पड़ा है, फिर भी फाका करते हैं। ऐसा फाका करना मानवता के लिए लाभदायी समझते हैं। उसमें भक्ति है, ऐसा मनुष्य समझता है। हम कहते हैं कि जितनी भक्ति रामनवमी के दिन या रमजान के दिन फाका करने में है, उससे ज्यादा भक्ति गाँव के वास्ते फाका करने में है। सब गाँव के लिए हमने अपना सब दे दिया, सारा गाँव एक होने पर भी अगर सबको पूरा खाना नहीं मिलता, तो हमारे पास जो था, वह बाँट लिया। ऐसे मौके पर अगर फाका करना पड़ेगा, तो सभी को फाका करने का मौका मिलेगा। जब ऐसा हो, तो समझना चाहिए कि आज महाशिवरात्रि है। यह परम भाग्य है। सबके दिल के साथ दिल जुड़ेगा, समाज बनेगा, ताकत बढ़ेगी।

फिर सब मिल कर उत्पादन बढ़ाने का रास्ता ढूँढ़ेंगे। गाँव में झगड़े कभी नहीं होंगे, वकील लोगों के पंजों से गाँव छूट जायेगा। सब मिल कर काम करेंगे। किसी एक भी व्यक्ति के सुख-दुःख में सारा गाँव सुखी या दुखी होगा। इस तरह कई प्रकार के लाभ हो सकते हैं। बाहर की मदद प्राप्त करना आसान हो जायेगा, गाँव में ग्रामोद्योग चलाना, अंबर चरखे से खादी बनाना, गाँव की तालीम आदि सब बातें आसान हो जायेंगी, क्योंकि गाँव एक हो गया। इसलिए गाँव की भलाई के लिए सब लोग सोचेंगे, तो उत्पादन बढ़ाने के लिए कुछ-न-कुछ जरिये उन्हें मिल ही जायेंगे, ये सब लाभ हैं। परंतु ये पहले दर्जे के लाभ नहीं है।

सबको फाके का मौका

पहले दर्जे का लाभ यही है कि हम सब एक हो गये। अभी तक चंद लोग खाते थे और बाकी के लोग फाका करते थे। अब खायेंगे, तो सब खायेंगे, फाके का मौका आयेगा, तो सब फाका करेंगे। ग्रामदान में सबसे बड़ा लाभ यह है कि सबको गाँव के लिए फाका करने का मौका मिलेगा!

ग्रामदान के बाद खाने-पीने को ज्यादा ही मिलेगा, ऐसा मत सोचो। यह तो एक बड़ा कल्याण है। इस कल्याण-कार्य में सबको खिलाये बिना हमें खाना नहीं मिलेगा, यह ग्रामदान का सबसे श्रेष्ठ लाभ है। फिर खाने को नहीं मिलेगा, तो सबको नहीं मिलेगा, तब सब मिलकर खाना प्राप्त करने की कोशिश करेंगे, संपत्ति किस तरह बढ़े, यह सोचेंगे। परंतु यह समझने की जरूरत है कि अलग-अलग थे, उससे बेहतर समाज यह है कि हम सब एक हैं।

हम ग्रामदान के लिए जमीन देंगे, तो हम ज्यादा सुखी होंगे, इस खयाल से जमीन मत दो। आपको ग्रामदान इसलिए नहीं करना है कि आप अवश्य सुखी होंगे, बल्कि

www.vinoba.in

इसलिए करना है कि लोगों के दुख से दुखी होने का मौका आपको मिलेगा। आज आपको यह मौका नहीं मिल रहा है। गाँव में दूसरे लोग दुखी हैं, फिर भी आप सुखी हैं। ग्रामदान के बाद उत्पादन बढ़ाना है, तो सब लोग बढ़ायेंगे। फाका करना है, तो सब लोग करेंगे। भीख माँगनी है, तो सब लोग माँगेंगे। चोरी करनी है तो सब लोग करेंगे। यह ग्रामदान का लाभ है।

अभी तक हमें करीब १५०० ग्रामदान मिले हैं। वे लोग सुखी हुए हैं, इसमें कोई शक नहीं। जब सारा गाँव एक हो जाता है, तो सबकी सम्मिलित अकल से काम करते हैं, इसलिए सबको मिल कर सुखी होने की राहें खुल जायेंगी। परन्तु हम वचन नहीं देते हैं कि आप सुखी होंगे, इसलिए ग्रामदान करो। हम स्वराज्य के बारे में लोगों को समझाते थे कि अंग्रेजों के राज्य में सुख होता होगा, तो भी हमें वह सुख नहीं चाहिए। ग्रामदान के लिए भी वही बात लागू होती है। ग्रामदान याने गाँव का स्वराज्य। प्यासे को तब समाधान होगा, जब पानी पेट में जायेगा। दस हाथ दूरी पर हो, तो भी समाधान नहीं होगा। इस तरह जब सब लोगों के अनुभव में स्वराज्य आयेगा, तब गाँव-गाँव में स्वराज्य आयेगा। ग्रामदान ग्रामराज्य की बुनियाद है। ग्रामदान से ग्रामसमाज बनेगा। गाँव सुखी बनाने की बात आगे आयेगी। ग्रामदान दे दोगे, तो ज़िंदा रहोगे। तुम्हारा समाज बनेगा। उसका पहला लाभ यह होगा कि फाका करने का मौका मिलेगा।

'कुरान' का यह कहना है कि यतीम, अनाथ और गरीब को हम खिलाते हैं, तो एक रोज के जितना सवाब मिलता है। सारांश यह है कि आजकल जो पुण्य कार्य चलता है, वह तब तक वास्तव में पुण्यकार्य नहीं होगा, जब तक गाँव में गरीब लोग मौजूद हैं। अगर आप उन गरीबों को खिलाते हैं, तो वही सच्चा पुण्य-कार्य होता है। यह चीज़ सब धर्मों ने कही है। बाइबिल में ईसा ने बताया है, "आपके पास कल के लिए संग्रह नहीं होना चाहिए।" आपके पास दो दिन का संग्रह है। गाँव में एक मनुष्य को फाका हो रहा है, तो अपने पास जो संग्रह है, वह दूसरे के पास जाना चाहिए। हाँ, सबको मिलता है, तिस पर भी बचता है, तो अलग बात। परंतु दूसरे को कुछ न हो और आपके पास संग्रह हो, तो वह बिलकुल गलत है। ग्रामदान की सबसे बड़ी बात यह है कि ग्रामदान से सबके सुख के साथ सुखी होने का और दुख के साथ दुखी होने का मौका हमको मिलता है। उसके बाद सब लोग सुखी होने की कोशिश करेंगे और परमेश्वर की कृपा से जरूर सुखी होंगे।

(कोगीलपुरम्, मदुरा, १५-१२-५६)

सेवकों को आवाहन

(विनोबा)

वर्धा से प्रोफेसर बंग लिखते हैं :

"निधि-मुक्ति और तंत्र-मुक्ति का निर्णय जब से लिया गया है, कार्यकर्ताओं में मैं सर्वत्र उत्साह की लहर देख रहा हूँ। हमारे नागविदर्भ में तो ऐसे भी इस निर्णय से कोई फरक पड़ने वाला है नहीं, क्योंकि यहाँ तंत्र नाम-मात्र का ही था और वर्धा, भंडारा, नागपुर आदि अनेक इलाकों के कुछ तालुकों में या संपूर्ण ज़िलों में अनेक दिनों से निधि-मुक्ति ही थी। किसी भी ज़िला या तालुका में भूदान-समिति नहीं थी। इसलिए काम में कमी होने की दृष्टि से, तंत्र-मुक्ति या निधि-मुक्ति का, कोई भी परिणाम हमारे प्रांत पर होने वाला नहीं है, बल्कि अनेक जिलों का काम बढ़ने वाला है। ऐसी योजनाएँ हम जगह-जगह बना रहे हैं।

"वर्धा ज़िले के कार्यकर्ता सोच रहे हैं कि १ जनवरी, '५७ से संपत्तिदान, सूत्रदान, सूतांजलि आदि में से कुछ लिये बिना ही सन् सत्तावन में, साल भर पूरा काम करें। स्त्रियों तथा बालकों को रिश्तेदारों के यहाँ अथवा संस्थाओं में शिक्षण के लिए भेज दिया जाय। इस तरह अगर हम बाबा का एक साल का जेल स्वीकार लें, तो काम को प्रचंड गति मिलेगी, क्योंकि संपत्तिदान-अन्नदान आदि की, तत्काल सहायता मिलने की दृष्टि से, एक मर्यादा आ जाती है। सन् बयालीस के बाद अब ये बारह-चौदह साल हो गये। हमेशा वेतन, निधि, संपत्ति-दान आदि के भरोसे ही हम लोग रहे। अब हम लोगों ने तय किया है कि कुछ लिये बिना ही बाबा की जेल स्वीकार की जाय। यह जेल कबूल करने वाले ऐसे सौ लोग वर्धा जिले में खड़े करने हैं। उनके आधार पर तीस हजार दानपत्र प्राप्त करने हैं और ऐसा करना है कि सारा वातावरण गूँज उठे। वर्धा ज़िले के ८५० गाँवों में "साम्ययोग" के दो हजार ग्राहक बनाने हैं, उनके सामूहिक पठन की व्यवस्था करनी है। आपने छठे हिस्से की सिफारिश की, इसलिए थोड़ा बाहर भी हो आयेंगे। अन्यथा हमारी इच्छा तो थी कि जिले में ही पूरी शक्ति लगाते। प्रचार इतना करेंगे कि हर शिक्षित व्यक्ति के पास भूदान-यज्ञ की एक पुस्तक तो पहुँचे ही। अनेक गाँवों में भूमिहीन नहीं रहेंगे। हर गाँव से एक-दो सर्वोदय-सेवक प्राप्त करेंगे। जिले में एक-दो स्थान पर, दस-पंद्रह गाँवों के पॉकेट्स (केंद्र) बनावेंगे। सामान्यतया वाहन-मुक्ति रहेगी। देहात में हर रोज दो घंटे खेत में या दूसरा काम करेंगे। व्यसन-मुक्ति का वातावरण निर्माण करेंगे।

"गत पचीस तारीख को हम लोगों ने ऐसी योजना बनायी है। आपके अभिप्राय के लिए प्रेषित है। मार्गदर्शन कीजियेगा। अकोला ज़िले ने भी एक बरस का बाबा की जेल कबूल करने वाले सेवक जुटाना प्रारंभ किया है।

"हमारी प्रार्थना है कि आप आवाहन करें—एक लाख भूदान-प्रेमियों के इस एक वर्ष के कारावास के लिए! इस बार देश को आप जैसों की ओर से आवाहन की आवश्यकता है। जगह-जगह सन् सत्तावन की हवा फैली हुई है। वह आप ही ने फैलायी है। उसका लाभ लिया जाय, तो यह अहिंसक क्रांति आगे बढ़ेगी।"

प्रो० बंग का पत्र करीब-करीब पूरा ही ऊपर दिया है। मैं आशा करता हूँ कि उसमें जो उत्साह है, वह संचारी सिद्ध होगा। उत्साह तो युवकों का स्वाभाविक गुण है। उसके साथ धृति रही, तो कर्ता धृत्युत्साह समन्वित होता है। सात्त्विक कर्ता के लक्षणों का यह मध्य भाग है :

मुक्तसङ्गोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्ता सात्त्विक उच्यते॥ (गी० १८-२६)

यह है पूर्ण लक्षण! हमारे कार्यकर्ताओं को चाहिए कि यह पूरा का पूरा लक्षण अभ्यास द्वारा हज़म करें।

'बाबा की जेल' वाली भाषा मैंने बिहार में चलाने का प्रयत्न किया। वह कुछ अंश में सफल हुयी। लेकिन वह बात अब बीते युग की हो गयी। दो बरस में युग बिलकुल बदल गया। सत्तावन याने, हमारे प्रबोध* की भाषा में सत-आवन! इसलिए 'बाबा की जेल' के बजाय अब भगवान् की जेल ही कबूल करना है और वह परिपूर्ण ही सफल होने वाली है।

निधि-मुक्ति से ईश्वर-सन्निधि और तंत्रमुक्ति से मंत्र-सिद्धि साधनी है। "तुका म्हणे ज़े ज़े भेटे ते ते वाटे मी ऐसे"—अनुभूति ऐसी चाहिए कि जो भी मिला, मेरा ही रूप। हम अपने साथ जिस तरह पूर्ण निस्संकोच रहते हैं और पूर्ण क्षमाशील होते हैं, जनता के साथ व्यवहार करते समय वैसे ही पूर्ण निस्संकोच और पूर्ण क्षमाशील रहना है।

तंत्र-मुक्ति और निधि-मुक्ति छोटी-सी बात है। वह तो हम नूतन वर्ष के आरंभ में ही साध रहे हैं। अहंकार-मुक्ति, वासना-मुक्ति तक की मंजिल हम साल भर में तय कर सकें, तो हमारा बड़ा काम होने वाला है। सेवकों की शुद्धि याने ही उनके कार्य की सिद्धि—यह सूत्र सतत चित्त में रहे।

कंबम् १४-१२-५६

(मूल मराठी लेख से)

---

*"भूमिपुत्र" के सम्पादक श्री. प्रबोध चौकसी।—सं०

www.vinoba.in

'तंत्रमुक्ति' किसलिअे ?

(लक्ष्मीनारायण भारतीय)

अभी पवनार (वर्धा) में, अ.भा. पदयात्रा-शिविर में, पलनी-संमेलन के निर्णयों पर महत्त्वपूर्ण चर्चाएँ हुईं। "तंत्रमुक्ति वास्तव में 'तंत्र'-मुक्ति है या 'प्रांतीय तंत्र' समाप्त करके 'जिला-तंत्र' हम खड़ा करने जा रहे हैं ? बिना तंत्र के भी कुछ चल सकेगा क्या ? थोड़ा तंत्र जब आप खड़ा करने ही वाले हैं, तो 'तंत्र-मुक्ति' शब्द क्यों गलत रूप से इस्तेमाल करते हैं ? निधि-मुक्ति से क्या आप अर्थ-मुक्ति तक नहीं जाना चाहते हैं ? संपत्तिदान भी क्या चंदा या निधि तो नहीं बन जायगा ? सत्ता की राजनीति और पक्ष-त्याग की व्याख्या क्या है ? पक्ष-विशेष में भी रह कर क्या लोक-नीति का अंगीकार नहीं किया जा सकता ?" ऐसे अनेक प्रश्न इस शिविर में खड़े हुए एवं बड़ी उद्बोधक चर्चा इन पर हुई। अभी हम 'तंत्रमुक्ति' ही पर यहाँ कुछ विचार करेंगे।

मित्रों की कुछ ऐसी मान्यता रही कि 'संगठन का संपूर्ण विसर्जन, तंत्र से ही सम्पूर्णतः मुक्ति हम नहीं ले रहे हैं, यह सूक्ष्म रूप से देखने से सहज पता चल जायगा।' इसके लिए 'तंत्र-मुक्ति' के बजाय 'तंत्र-परिवर्तन' शब्द भी फिर चला और अध्यक्ष ने भी शिविरार्थियों से यह शब्द ले कर चर्चा करने को कहा ! पर हम समझते हैं कि इस प्रश्न पर गहराई से सोचने की जरूरत है। दानपत्रों को नोट करना, सर्व-सेवा-संघ से पत्र-व्यवहार करना, संपत्तिदान का विनियोग कार्यकर्ताओं की जीविका के लिए करने की व्यवस्था करना, जिले से कम क्षेत्रों के लिए सहयोगी सेवकों का संगठन करना या व्यवस्था करना आदि छोटे-मोटे ऐसे अनेक काम हैं; जिनके लिए एक कार्यालय तो रहेगा एवं उस कार्यालय की जिम्मेवारी भी फिर किसीको उठानी होगी, भले ही वह जिला-स्तर पर हो। हम मानते हैं कि इसके लिए न पलनी में, न सर्व-सेवा-संघ में पूर्ण निषेध हुआ है; बल्कि स्वीकृति भी दी गयी है; यहाँ तक कि प्रकाशन-समितियाँ हर प्रांत में गठित करने का भी तय हुआ है। पर पलनी के निर्णयों का इसके लिए उत्तर यही है, जैसा कि हम समझे हैं, कि इसमें "तंत्र"का निषेध तो नहीं है, पर उस तंत्र की जिम्मेवारी 'भूदान-सेवक' पर नहीं, स्थानीय विधायक संस्था या नागरिकों पर ही रहेगी। ऐसे सेवकों को 'तंत्रमुक्त' होना है, न कि समाज में से ही। "तंत्रमुक्ति" का अर्थ अभी इसमें अभिप्रेत है ! समाज ही तंत्रमुक्त अर्थात् शासन-मुक्त हो, यह चीज इसमें से निकले, तो वह अलग बात है, पर आज हमारा लक्ष्य "क्रांतिकार्य" को तंत्र-मुक्त करने का है, इतना हम स्पष्ट रूप से समझ लें। दूसरे शब्दों में, 'तंत्रनिष्ठा', 'तांत्रिकता' और 'तंत्र-आधार' से भूदान-आन्दोलन को मुक्त करने का ही यह आवाहन है। स्पष्ट है कि 'तंत्रनिष्ठा' एवं 'तांत्रिकता' जहाँ सीमा लांघ जाती है, वहाँ 'तंत्र' सड़ने लगता है। ऐसा तंत्र और कहीं चल भी सकता है, पर क्रांति में वह नहीं चल सकता। हमें यह नहीं कहना है कि प्रांतिक भूदान-समितियों का तंत्र कुछ सड़ने लगा था। पर विनोबा ने उसकी भी संभावना खत्म कर दी, तंत्र-बद्धता की वृत्ति का ही छेद कर दिया और क्रांति को सहस्रमुखी बनने का मार्ग प्रशस्त कर दिया। तंत्र के सड़ने की राह उन्होंने देखी ही नहीं। हमारे तंत्र में भी अधिकार, सत्ता, मतभेद, मनमुटाव के कुछ चिह्न दृष्टिगोचर तो हो रहे थे, पर वे इतने छोटे एवं सूक्ष्म थे कि वे किसी तरह आन्दोलन पर हावी नहीं हो सकते थे। इसलिए 'तंत्रमुक्ति' की मुख्य वस्तु यही है कि 'क्रान्ति' तंत्र-निर्भरता एवं तंत्र-निष्ठा से पूर्ण मुक्त हो ! एक तंत्र अवश्य रहेगा, जो कुछ संयोजन एवं व्यवस्था भी करेगा, परन्तु उसकी जिम्मेवारी, यानी 'भार' अब ऐसे भूदान-सेवकों पर नहीं रहेगा। 'दफ्तरी काम' एवं छोटा-मोटा 'संगठन' तांत्रिकता से मुक्त होकर भूदान-सेवकों को सहायता भी करेगा, पर उसका भार अन्य लोगों पर रहेगा। इसलिए हम समझते हैं कि 'तंत्रमुक्ति' शब्द हम न बदलें। उसका अर्थ भर समझ लें। संक्षेप में, जनक्रांति का बिगुल फूँकने का ही काम ऐसे सेवक करेंगे, दफ्तरी झंझटों में, भार में वे नहीं फँसेंगे। जो भी छोटा-मोटा तंत्र होगा, वह इन सेवकों की सेवा में, उनके अधीन होगा; वे आंदोलन को उसके अधीन नहीं रखेंगे।

ऐसे सेवकों को विनोबा ने 'सिंह-शावक'-सिंह के बच्चे कहा है ! कोई उपमा जब दी जाती है, तो उसको लक्षणा-व्यंजना से ही लिया जाता है, यह बहुत साधारण-सी बात है। 'सिंह' के साथ हिंसा आदि जो भी सहचारी भाव हों, निर्भयता, समर्थता आदि उसके विशिष्ट गुण हैं और वे ही विनोबा को अभिप्रेत हो सकते हैं। किसी तरह के जंजाल में, तंत्र में न फँस कर निर्भय होकर दृढ़ आत्मविश्वास एवं श्रद्धा के साथ वह, अकेला भी चलने का मौका आये, तो चले, यह उसका सीधा-सादा मतलब है। पर इसकी एक और विशेषता है। उन्होंने सिंह नहीं, सिंह का बच्चा कहा है। जहाँ सिंह-'शावक' कहा कि ममत्व और आक्रमण (स्नेह का !) भी वहाँ आ जाते हैं। वह पक्ष-मुक्त, तंत्र-मुक्त एवं निधि-मुक्त सेवक तो हो सकता है, पर इतना ही काफी नहीं है। उसे सबका प्यार एवं सब पर प्यार, यह भी सधना चाहिए। इसलिए उन्होंने "भूदान-यज्ञ" के ता० १४ दिसम्बर के अंक में एक सर्किल निकाल कर अपनी बात साफ कर दी है। ऐसा "शावक" सहज ही सबका ममत्व पा लेता है और वह ममत्व भी तभी प्राप्त करता है, जब सबके हृदयों को खींच सकें ! एक मजमे में एक सिंह आवे, दूसरे में छोटा शावक, तो दोनों स्थानों की प्रतिक्रियाएँ सर्वथा भिन्न होंगी, यह स्पष्ट ही है ! सिंह-शावक की उपमा का अर्थ यह भी नहीं है कि किसी भी तरह के नियंत्रण का अभाव, जैसे कि शासन-मुक्ति का अर्थ किसी भी तरह के शासन से रहितता नहीं है ! वस्तुतः इस उपमा से भय के स्थान पर निर्भयता, सामर्थ्य, हिम्मत, जिंदादिली आदि का ही प्रतीक मन में खड़ा होता है। लेकिन उपमा अंततः उपमा है। वह वस्तु को स्पष्ट करने के लिए होती है, ढाँक देने के लिए नहीं !

समय की आकांक्षा

प्रस्तुत निर्णय सब कार्यकर्ताओं की संमति से लिया जाता, तो अच्छा होता, ऐसा भी एक विचार-प्रवाह दीख पड़ा। इस पर थोड़ा मनोवैज्ञानिक रूप से सोचना चाहिए। यह आन्दोलन है। लोकतंत्र की तांत्रिकता यहाँ हर वक्त काम नहीं आ सकती। हमारे अब तक के संकल्पों की पार्श्वभूमि यही रही है। कई बार तो जनमानस का ही प्रतिबिंब ऐसे निर्णयों में दीख पड़ता है। एक कलाकार जब किसी गीत, मूर्ति या कथा का सृजन करता है, तो असंख्य लोग रस-विभोर होकर उसमें अपने हृदय का ही सामंजस्य पाते हैं। कई तो कहते हैं, अरे, यही-यही तो हमारे अंतर में था, पर बता ही नहीं चलता था ! परिस्थिति की 'अर्ज' (तकाज़ा) ही ऐसे निर्णय कराता है। हम तो आगे बढ़कर यह भी कहेंगे कि परिस्थिति में ऐसी अर्ज-तकाजा-न हो, तो वे लिये ही नहीं जा सकते, ले भी लें, तो टिक नहीं सकते ! कांचीपुरम में तंत्रमुक्ति की ऐसी भूख निर्माण नहीं हुई थी, भले ही चर्चा चली हो। जो उत्साह एवं प्रेरणा आज छोटे-छोटे कार्यकर्ताओं में दीख पड़ती है, वह उस समय शायद नहीं दीखती। वैसे अभी तक हमारा कोई गहरा तंत्र था ही नहीं। जो था, वह भी हमने तोड़ा, तो उसका "बिजली" का-सा असर भी परिस्थिति की पुकार के समय ही हो सकता था और वही आज हुआ है। इस वक्त कुछ घबराहट भी नजर आ रही है, जो स्वाभाविक ही है। आज तक बिना तंत्र के क्रांति हुई है, ऐसा अक्सर हुआ नहीं। समाज में तंत्र आवश्यक तो था ही, क्रांति में भी वह आवश्यक था। हमारे स्वराज्य-आन्दोलनों में भी संचित निधि शायद न रही हो, पर फिर भी तंत्र था। वह तंत्र भी तलवार की धार पर चलने वाला था, पर था और शायद उसके बिना चलता भी नहीं ! पर वह जिस हद तक जनावलंबित था, उससे असंख्य गुना यह जनावलंबित है, इसीलिए "सर्व" शब्द जोड़ा गया है ! इसलिए यहाँ तंत्र भी इसी रूप में काम करेगा, परंपरागत रूप में नहीं। इस क्रांति की 'टेकनिक' का ही यह अंग है।

इसमें एक और मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि एक युगाकांक्षा भी यहाँ प्रकट हुई है। इस युग की आकांक्षा है, मुक्ति की चाह ! जीवन अब मुक्त, बंधनरहित होकर चलना चाहता है, जैसे उसकी आत्मा मुक्ति के लिए छटपटा रही हो ! यह एक प्रतिक्रिया ही है —उन बंधनों के— दबावों के खिलाफ। इसीलिए घर-समाज-स्कूल-कॉलेज-संस्था-सत्ता-पक्ष, सबमें, सर्वत्र, एक तीव्र अनुशासन-हीनता प्रकट हो रही है ! शासन, जो अब तक विभिन्न रूपों में बढ़ते चला, उसीके विरुद्ध यह विद्रोह है ! बाह्य दबाव का युग बीत रहा है। नियम, सत्ता, बंधन, अधिकार, पद, आदि कई रूप लेकर यह दबाव आज तंत्र के भीतर घुस गया था ! इसलिए हर नियम-सत्ता-पद के विरुद्ध असंतोष नजर आता है, क्योंकि पहले की मर्यादा छोड़ कर वह आज व्यक्तित्व को दबोच रहा है ! छोटा व्यक्तित्व यह दबाव महसूस नहीं करता, न उसका दबाव दीख पड़ता है। बड़े व्यक्तित्व को दबाने वाली चीज़ दीख जाती है। उस रोज विनोबा ने ठीक ही कहा था कि 'जवाहरलाल यदि हार जायँ, तो खुले सिंह की भाँति जनता में प्रवेश करेंगे !' याने जवाहरलाल जैसा व्यक्तित्व तंत्रबद्ध होकर आज छटपटा रहा है, यह स्पष्ट है। फिर भी वे बड़े हैं, तो उसमें खो भले ही गये हों, खत्म नहीं हुए हैं, जब कि छोटा व्यक्तित्व खत्म भी हो जाता है।

हमें कहने दीजिये कि तंत्रमुक्ति का ऐलान करके विनोबा ने एक युगाकांक्षा भी प्रकट की है। आज वह आंदोलन तक महदूद है, कल सारे रोग की दवाई भी हो सकेगी। उस चर्चा में हम ज्यादा नहीं जाना चाहते। वह स्वतंत्र विवेचना का विषय है। न ही यह कहना चाहते हैं कि विनोबा ने सारा तंत्र समाप्त करके उच्छृङ्खलता का ऐलान कर दिया है ! शासन-मुक्ति तभी आती है, जब भीतरी

www.vinoba.in

शासन आ जाय। आज शासन के विरुद्ध जनमानस में विद्रोह तो बढ़ रहा है, लेकिन भीतरी अनुशासन नहीं आया है। जब पुरानी चीजें उखड़ती तो हैं, फौरन उनके स्थान पर नयी चीजें–नये मूल्य–खड़े करने होते हैं, आज ऐसा हो नहीं रहा है! इसीलिए सर्वत्र अनुशासनहीनता भी बढ़ रही है! इसका एकमात्र कारण है, अधिकारी या तंत्राधारी तात्या पंतोजी–पुराने मास्टरजी–ही रहे, आगे देख-बढ़ नहीं पाये और छात्र "छड़ी लागे, विद्या आये" से बहुत आगे बढ़ गये हैं! पर राह बताने मिला नहीं, तो वे इधर-उधर भटक जाते हैं। हमारी 'तंत्रमुक्ति' में से ऐसी कोई अराजकता निर्माण न हो, इसलिए विनोबा ने, चतुर्विधनिष्ठा का पाथेय दे दिया है और क्रांति को "सर्वजनावलंबी" करने का भी मंत्र प्रस्तुत कर दिया है! 'सीधे' चेतन-चेतन के संबंध एवं संघात-'द्वारा' चेतन के पारस्परिक संबंध, इन दोनों में प्रथम संबंध ही महत्त्व के होते हैं एवं वे एक नैतिक शक्ति के सामूहिक सृजन के आधार बन सकते हैं; यह भी इसमें विचारणीय अंश है, जिसका गहराई से चिंतन करने पर उसका महत्त्व सहज प्रकट हो जाता है।

गंभीर प्रयोग

तंत्रमुक्ति का यह प्रयोग न सिर्फ इस आंदोलन के लिए, बल्कि सारी समाज-रचना के लिए बहुत ही कसौटी का एवं महत्त्वपूर्ण प्रयोग है। जैसा कि विनोबा ने कहा, आंदोलन इससे खत्म भी हो सकता है, बढ़ भी सकता है। तंत्र-मुक्ति का मर्म हम समझ लें एवं जो स्फूर्ति निर्माताओं में निर्माण हुई है, उसको पकड़ लें, तो निस्संदेह यह तंत्र-मुक्ति अभिशाप नहीं, वरदान ही सिद्ध होगी। शाब्दिक खींचातानी में न जायँ कि जहाँ थोड़ा तो तंत्र रहेगा, थोड़ा तो संगठन रहेगा, थोड़ा तो संयोजन रहेगा, तो फिर यह तंत्रमुक्ति कैसे हुई? तंत्र के हम पुरजे न बनें–आंदोलन लीक-मुक्त होकर सर्वजनाधारी बने–यही तंत्रमुक्ति का संदेश है। जो थोड़ा-बहुत तंत्र स्थानीय रूप में, विकेंद्रित पद्धति से रहेगा, वह सर्वथा तांत्रिकता एवं तंत्रनिष्ठा से मुक्त तंत्र ही रहेगा। सन् '५७ में आंदोलन को सहस्रमुखी बनाने की राह ही इससे प्रशस्त हुई है! वस्तुतः आंदोलन 'सर्वजन के लिए' 'सर्वजन द्वारा' 'सर्वजन की ओर से ही' चले, इसीमें उसकी सार्थकता, सफलता एवं औचित्य है, इसी दृष्टिकोण से हम 'तंत्रमुक्ति'-की ओर देखें और इस शब्द से घबरायें नहीं। जो एक बड़ी क्रांति के वाहक होने वाले हैं, जो एक महान् भार अब वहन करने वाले हैं, वे ऐसे छोटे एवं कमी बाधक भी बन जाने वाले तंत्र-भार से मुक्त हों, मुक्त ही रहें, क्या यही संकेत इसमें प्रकट नहीं हुआ है?

पवनार, ता० १३-१२-'५६

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में पशु-पालन

(मोहनलाल सक्सेना)

अति प्राचीन काल से भारत कृषि पर निर्भर करता चला आ रहा है, जिसका मुख्य आधार बैल था। यहाँ की अधिकांश जनता को गाय के दूध से पौष्टिक आहार प्राप्त होता रहा है। सच तो यह है कि पशुधन भारतीय अर्थ-व्यवस्था का मूलाधार है। उसकी संख्या और क्षमता में सुधार होने से स्वभावतः किसानों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति में सुधार होगा और देश की राष्ट्रीय आय बढ़ेगी। इस समय भी इस साधन से राष्ट्रीय आय में १५ से २० प्रतिशत तक अंशदान प्राप्त होने का अनुमान लगाया गया है। अतः राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की किसी भी योजना में पशुधन के विकास और पर्याप्त मात्रा में दूध के उत्पादन को ऊँची प्राथमिकता देनी होगी। किन्तु इस विषय के सम्बन्ध में योजना की रूपरेखा उतनी ही निराशाजनक है, जितनी कि पहली योजना में इस दिशा में हुई प्रगति।

योजना की रूपरेखा में स्वीकार किया गया है कि "इस समय ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था के विकास और रहन-सहन के स्तर को ऊँचा उठाने में पशु-पालन द्वारा जितना योग प्राप्त हो सकता है, उसका बहुत ही कम अंश हासिल किया जा रहा है।" द्वितीय पंचवर्षीय योजना में पशु-पालन के विकास और दुग्ध-व्यवसाय पर ५६ करोड़ रुपये व्यय करने की व्यवस्था की गयी है। यह उम्मीद की गयी है कि आने वाले वर्षों में कृषि के इस क्षेत्र में पहले से कहीं ज्यादा उन्नति होगी, किन्तु यह कथन बेहद अस्पष्ट है। इस दिशा में आयोजकों को कम-से-कम इतना तो करना ही चाहिए था कि वे उन कारणों पर प्रकाश डालते, जिनसे कृषि के इस क्षेत्र के विकास का मार्ग अवरुद्ध रहा है और ऐसे उपाय बतलाते जिनका अनुशीलन करके इस दिशा में काफी उन्नति की जा सकती। किन्तु कुछ कथन ऐसे भी हैं, जिनकी जाँच ध्यानपूर्वक करने की जरूरत है। यह कथन इस बात को स्पष्ट कर देता है कि जिन लोगों पर पशु-पालन के विकास का भार रखा गया है, वे किस दिशा में सोचते हैं।

पशुओं की संख्या

सन् १९५१ की पशु-गणना के अनुसार भारत में पशुओं की संख्या इस प्रकार थी :

	(लाख में)		(लाख में)
गाय		भैंस	
प्रजननशील गायें	४६३.४	प्रजननशील भैंसें	२०९.९
प्रजननशील साँड़	६.५	प्रजननशील भैंसे	३.१
बैल	५६४.१	काम करने वाले	
गाय	२३.१	नर	६०.१
बछड़े	४३४.९	मादा	५.३
		बच्चे	१४७.३
अन्य	३८.९	अन्य	७.८
कुल	१५३०.९	कुल	४३३.५

पशुधन की अवनति

योजना की रूपरेखा में कहा गया है कि १९५०-५१ में इतनी अधिक संख्या होने के बावजूद, पशुओं के शुद्ध उत्पादन का मूल्य केवल ६६४ करोड़ रुपये, याने कृषि से होने वाली कुल आय का केवल १६ प्रतिशत ही था। किन्तु सवाल यह है कि पहली योजना के शुरू में लगाया गया १,००० करोड़ रुपये का अनुमान इतना घट क्यों गया? सन् १९३५ में इंग्लैण्ड के दुग्ध-व्यवसाय विशेषज्ञ डॉक्टर एन. सी. राइट ने पशुओं से होने वाली आय का अनुमान १ हजार करोड़ रुपये लगाया था, जो कि आजकल के मूल्य-स्तर के आधार पर लगभग ३ हजार करोड़ रुपये के बराबर होगा। अखिल भारतीय पशु-चिकित्सा-संस्था, इज्जतनगर के पशु-खाद्य तत्त्व-विभाग के अध्यक्ष डॉक्टर एम. डी. केहर ने भी अनुमान लगाया है कि इस साधन से होने वाली आय ३ हजार करोड़ रुपये होनी चाहिए। अतः आयोजकों को चाहिए था कि वे बताते कि वे ६६४ करोड़ रुपये के अनुमान पर वे किस प्रकार पहुँचे हैं। जो यदि सही है, तो स्पष्ट कर देता कि पहली योजना के अन्तर्गत इस धन्धे में अधिक उत्पादन होने का दावा करने के बावजूद पशु-पालन-व्यवसाय में ४४ प्रतिशत की कमी हुई। अन्य कारणों के अभाव में हम यही कहेंगे कि इसकी वजह सिर्फ पशुओं की अवनति और उनका विनाश ही रही है। योजना की रूपरेखा में विधान की धारा ४८ में दिये गये इस विशेष निर्देश से भी उसकी पुष्टि हो जाती है कि राज्य आधुनिक कृषि और पशु-पालन के धंधे का संगठन आधुनिक और वैज्ञानिक तरीकों पर करने की कोशिश करेगा, और विशेष रूप से पशुओं की नस्ल सुधारने और गायों या दूसरे दूध देने वाले जानवरों की हत्या को रोकने के लिए कदम उठायगा। इन निर्देश के बावजूद गत ६ वर्षों में हमारे पशुधन की हालत खराब होती गयी है। ऐसी हालत में आयोजकों से अपेक्षा थी कि वे इसके सुधार के लिए प्रत्यक्ष और स्पष्ट उपाय बतलाते, किन्तु ऐसा करने के बजाय उन्होंने कहा है कि इस निर्देशक सिद्धांत को लागू करने में इस बात का ध्यान रखना होगा कि ऐसी हालतें न पैदा हो जाय, जिनसे विधान बचना चाहता है। उन्होंने विशेषज्ञ-समिति के सुझावों का भी हवाला दिया है, जो इस नतीजे पर पहुँची थी कि सभी पशुओं का एकदम वध रोक देने से उनकी संख्या काफी बढ़ जायगी और इससे अच्छे पशुओं की संख्या और भी कम हो जायगी। मेरी राय में आयोजकों ने समिति के सुझावों का हवाला देने में कोई अक्लमन्दी नहीं दिखलायी है, जोकि विधान के निर्देशक सिद्धांतों के विरुद्ध है और पिछली विशेषज्ञ-समितियों के सुझावों के भी खिलाफ है। इस समिति में केवल सरकारी अधिकारी ही रहे हैं, अतः उसके सुझावों पर स्वीकृति देने के पूर्व संसद द्वारा उन पर विचार अवश्य होना चाहिए था।

विशेषज्ञ-समिति के सुझाव

इस कमेटी के सुझावों के बारे में भी कुछ कह देना अनुचित न होगा। समिति की रिपोर्ट पर प्रथम आक्षेप यह है कि यद्यपि इसे पशुवध रोकने के लिए सुझाव देने के उद्देश्य से नियुक्त किया गया था, तथापि इसके सुझावों से "बेकार पशुओं के विनाश" की प्रक्रिया और तीव्र होकर रहेगी। मिसाल के तौर पर, समिति ने पशुवध पर रोक लगाने का विरोध किया है और गोसदन पर रोक लगाने का समर्थन किया है। समिति पंजाब से कलकत्ता और बम्बई को पशुओं के निर्यात पर रोक लगाने के विरुद्ध भी है। ये सुझाव ऐसे निष्कर्षों पर आधारित हैं जिनकी पुष्टि वास्तविकता से नहीं हो पाती। समिति ने यह निष्कर्ष निकाला है कि

www.vinoba.in

देश में इस समय चारे या पशुओं के पालन-पोषण के जो साधन उपलब्ध हैं, वे मौजूदा पशुसंख्या के लिए भी पर्याप्त नहीं हैं। सभी पशुओं के वध पर और रोक लगाने से पशुओं की संख्या अधिक बढ़ जायेगी और इससे देश के अच्छे पशुओं की वर्तमान संख्या घट जायेगी। आम धारणा यह है कि भारत में पशुओं की संख्या जरूरत से ज्यादा है, किन्तु यह बात एकदम निराधार है। इसकी असत्यता भारत में पशुधन पर क्रय-विक्रय संबंधी समिति की १९४६ की रिपोर्ट के निम्नलिखित उद्धरण से सिद्ध हो जायेगी : "न तो यह दुनिया में सबसे पशुओं की घनी आबादी वाला देश है और न यहाँ मनुष्यों की जनसंख्या की तुलना में पशुओं की संख्या ही अधिक है, जैसा कि संसार के उन देशों में है, जहाँ पशुपालन पर विशेष जोर दिया जाता है।"

बेकार पशु

जहाँ तक बेकार और अलाभकर पशुओं का संबंध है, हमारे यहाँ काफी मतभेद पाया जाता है। सरकारी विशेषज्ञों का मत है कि अनुत्पादक और बेकार पशुओं की संख्या १० से ३० प्रतिशत तक है, किन्तु कहीं भी यह नहीं बताया गया है कि बेकार पशु कहते किसे हैं। पश्चिमी देशों की स्तर की तुलना में प्रति दिन दो पौंड या उससे कम दूध देने वाली गायें उत्पादक नहीं कही जायेंगी। लेकिन हमारे देश की स्थिति काफी भिन्न है। यदि दो पौंड या उससे कम दूध देने वाली गायों को बेकार कह दिया जाय तो सारे देश की ९० फीसदी से ज्यादा गायें तो बेकार की श्रेणी में आ जायेंगी और दूध के उत्पादन में ७० फीसदी के लगभग कमी हो जायगी। उन्हें कुछ दूसरे कारणों से भी सुरक्षित रखना पड़ेगा, क्योंकि वे बैलों को जन्म देती हैं। प्रजनन में चाहे जितना भी सुधार हो, एक गाय एक बार एक से ज्यादा बछड़े को जन्म नहीं दे सकती, और अच्छे किस्म के बैलों की पर्याप्त पूर्ति में काफी अर्सा लगेगा। अतः ऐसा करना तत्काल उचित नहीं है। सभी बातों पर विचार करके खाद्य तत्त्व सलाहकारी समिति ने सुझाव दिया था कि प्रति दिन दो पौंड से कम दूध देने वाली गायों को भी कायम रखा जाय। इस दृष्टिकोण के समर्थन में प्रथम पंचवर्षीय योजना में कहा गया था : "चूँकि सामान्य मात्रा में पशुवध होने से समस्या पर कोई खास असर नहीं पड़ता, अतः बेकार पशुओं को एक सिरे से वध कर देना फिजूल है। इस स्थिति को सुलझाने के लिए कोई अन्य उपाय सोच निकालना होगा। इस तरह का एक उपाय है : ऐसे क्षेत्रों में बड़े-बड़े शिविर खोलें, जहाँ चारे का ठीक तरह से उपयोग नहीं हो पाता। वहाँ पिंजरापोलों से बेकार पशुओं को हटा कर लाया जाय। इससे चारे की मौजूदा स्थिति पर से काफी भार कम हो जायगा। इन शिविरों में पशुओं के गोबर आदि एकत्र करके उनसे फायदा उठाया जा सकता है और उनकी स्वाभाविक मृत्यु के बाद उनकी हड्डी आदि का इस्तेमाल हो सकता है।"

गोसदनों की व्यवस्था

अतः बेकार पशुओं की समस्या का समाधान उनका वध करके नहीं हो सकता। दरअसल, उन्हें तो सदनों में रख कर ही इस मसले को हल किया जा सकता है। अतः पहली योजना में ३,२०,००० गायों और दूसरे पशुओं के लिए १६० गोसदनों की स्थापना की व्यवस्था की गयी थी, किन्तु गत पाँच वर्षों के भीतर केवल ८ हजार पशुओं के लिए २२ गोसदन ही स्थापित किये जा सके। दूसरी योजना के भीतर केवल तीस हजार पशुओं के लिए ६० गोसदन खोलने की ही व्यवस्था है। योजना की रूपरेखा में यह नहीं बताया गया कि गोसदन की योजना क्यों असफल रही, लेकिन इससे भी बुरी बात यह है कि आयोजकों का विश्वास पाँच वर्ष पहले स्वयं उनके द्वारा सुझाये गये उपाय पर से हट गया है। उन्होंने राज्यों से अनुरोध किया है कि "वे उपलब्ध चारा-संबंधी साधनों की वास्तविक तस्वीर सामने रखें।" दूसरी ओर, यह निश्चित रूप से कहा गया है कि गोसदन-योजना की असफलता मुख्यतः इसलिए हुई है कि उसको कार्यान्वित करने का भार उन लोगों पर रखा गया है, जिन्हें इस योजना में विश्वास नहीं। यह सिद्ध करने के लिए कि यह योजना आत्म-निर्भर बनायी जा सकती है, काफी आँकड़े भी दिये गये हैं।

पशुवध पर रोक

विशेषज्ञ-समिति का यह निष्कर्ष भी पिछले अनुभवों से सिद्ध नहीं हो पाता कि बेकार पशुओं की संख्या पशुवध पर रोक लगाने से बढ़ जायेगी। जम्मू और कश्मीर, राजस्थान और विन्ध्य-प्रदेश राज्यों में बहुत अर्से से गोवध पर रोक है, फिर भी वहाँ आसाम, उड़ीसा, मद्रास और पश्चिमी बंगाल की तुलना में, जहाँ पशुधन पर रोक नहीं है, बेकार पशुओं की संख्या ५० प्रतिशत कम है। इसका मुख्य कारण यह बताया जाता है कि कसाई भी अच्छे पशुओं को ही पसंद करते हैं।

चारे की कमी

चारे की कमी की समस्या को बेकार पशुओं को हटा कर हल नहीं किया जा सकता, क्योंकि ऐसे पशुओं का प्रतिशत बहुत ही कम है। स्वयं विशेषज्ञ-समिति के अनुसार, यदि सभी उपयोगी पशुओं को संरक्षित करना है, तो सरकार को लगभग ९५ प्रतिशत पशु-संख्या के लिए चारे और धन की व्यवस्था करनी होगी। अतः जब कि खाद्य-उत्पादन की वृद्धि का लक्ष्य १५ से ४० प्रतिशत रखा गया है, शेष ५ फीसदी पशुओं के लिए भी चारे की व्यवस्था करना संभव होना चाहिए। लेकिन उल्लेखनीय बात यह है कि चारे और दाने की बेहद कमी के बावजूद, पहली योजना के भीतर उनकी पूर्ति बढ़ाने के लिए कोई भी कोशिश नहीं की गयी, यहाँ तक कि दूसरी योजना की रूपरेखा में भी इसके लिए कोई व्यवस्था नहीं की गयी है।

भावना संबंधी पक्ष के अलावा, जो कि इस समस्या के मामले में निश्चय ही काफी गहरा है, ऊपर बताये गये तथ्य यह संकेत करते हैं कि एक उच्च समिति द्वारा पशु-पालन विभाग की जाँच होनी चाहिए। हर दिशा में आयोजकों द्वारा इस महत्त्वपूर्ण समस्या के सम्बन्ध में अपनी नीति को संशोधित करना उचित नहीं है, न ही उनके लिए यह ही उचित है कि वे विशेषज्ञ-समिति के सुझावों का समर्थन करें। दूसरी योजना की अवधि में कुल २२ हजार साँड़ों को पालने का आयोजन है, जब कि पहली योजना में उनका लक्ष्य १ लाख का था। पिछले पाँच सालों में कितने साँड़ पाले गये, उसके बारे में रूपरेखा में कुछ भी नहीं कहा गया है। उसमें यह भी नहीं बताया गया है कि उनकी संख्या के लक्ष्य में कमी क्यों की गयी। जितने साँड़ों को पालने की योजना है, उनसे देश के २५ फीसदी गाँवों की जरूरत भी मुश्किल से पूरी हो पायेगी। इसी तरह पशु-चिकित्सा के विस्तार की योजना भी बेहद अपर्याप्त है।

दुग्ध-व्यवस्था

अक्तूबर १९५५ में मैंने योजना-आयोग के सामने शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में सहकारिता के आधार पर दूध की पूर्ति करने की एक योजना रखी थी। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि उस पर विचार नहीं किया गया। मुझे इसकी शिकायत नहीं, लेकिन मैं आयोजकों को यह बात याद दिलाने के लिए उसका उल्लेख कर रहा हूँ कि गैर-सरकारी लोगों के सुझावों का किस तरह तिरस्कार होता है। कम-से-कम यह तो आशा थी ही कि दूसरी योजना में पहली योजना की भूल सुधार ली जायेगी। पहली योजना के अनुसार देश में प्रति व्यक्ति दूध और दूध से तैयार सामान की खपत प्रति दिन ५ औंस थी, जब कि संतुलित भोजन की दृष्टि से इसे कम-से-कम १५ औंस होना जरूरी बताया गया है। उसमें यह भी कहा गया है कि "गहन रूप से प्रयत्न किये गये क्षेत्रों में १० से १२ वर्षों के भीतर दूध के उत्पादन में ३० से ४० फीसदी वृद्धि का सामान्य लक्ष्य होना चाहिए।" इसका अर्थ है : १९५६ में प्रति व्यक्ति ८ औंस की पूर्ति यह निम्नतम आवश्यक मात्रा के आधे के बराबर है। कितने खेद की बात है कि हम अपनी अर्थ-व्यवस्था की सुरक्षा के लिए इस्पात का विकास करना चाहते हैं, परन्तु अपने शरीर और अस्थियों की रक्षा के लिए दूध का नहीं।

द्वितीय योजना की अवधि में सिर्फ १७ करोड़ रुपये— ३० शहरी दुग्ध-केन्द्रों, १२ सहकारी घी-निर्माण-केन्द्रों और ७ दुग्धशालाओं की स्थापना पर—खर्च करने की व्यवस्था है। दुग्धशालाएँ ग्रामीण क्षेत्रों में स्थापित होंगी, जहाँ घी, मक्खन आदि तैयार होगा। इसका मतलब यह है कि अब गाँवों को वह घी, दूध और मक्खन भी उपभोग के लिए नहीं मिल सकेगा।

दूसरी योजना में १२ करोड़ रुपये मत्स्य-उद्योग के विकास पर और ३ करोड़ मुर्गी-पालन पर व्यय होंगे। इसके जरिये प्रति व्यक्ति अण्डों की पूर्ति ४ से बढ़ा कर २० हो जायगी। लेकिन यह नहीं बताया गया है कि १० या १२ वर्षों में प्रस्तावित ४० से ५० फीसदी वृद्धि में से द्वितीय पंचवर्षीय योजना-अवधि में कितनी होगी।

('आर्थिक समीक्षा' से साभार)

—

www.vinoba.in

भूदान-यज्ञ

२८ दिसंबर सन् १९५६

लोकनागरी लिपि

सब पक्षों की सरकार बने

(वीनोबा)

पुरानी सरकार ने जो बहुत से कार्य शुरू किये, वे नयी सरकार को भी जारी ही रखने पड़ते हैं। ऐसा अगर है, तो फीर हमारे मन में भी ऐसा आता है की सारे भीन्न-भीन्न पक्षों के लोग अेक नया वीचार क्यों नहीं करते हैं? कुछ काम अपने हर अेक के अलग-अलग वीचार के मुताबीक होते हैं और कुछ काम देश के सब लोगों की सम्मती से हो सकते हैं, जैसे की शराब-बंदी होनी चाहीअे, सब लोग यह मानते हैं। गांव-गांव में सफाअी होनी चाहीअे, आरोग्य भी बढ़ना चाहीअे। गांव के लोगों को धंधा-रोजी मीलनी चाहीअे। सब लोगों को तालीम मीलनी चाहीअे। ये सब बातें भीन्न-भीन्न पक्षों के जो कथन नीकले हैं, अुनमें समान होती है। अुस हालत में जो सर्वसमान अंश हो, वह लेकर ही राज्यकारोबार क्यों न चलाये? सरकार के अंदर सब पक्षों का प्रतीनीधीत्व हो। लोग कहते हैं की अैसा करेंगे, तो छोटे-छोटे काम बनेंगे, बड़े काम नहीं बनेंगे। हम कहते हैं की अुससे बहुत ही अच्छे और मजबूत काम बनेंगे, क्योंकी जो कार्य होगा, अुसमें सब लोगों का अेक वीचार होगा और सबकी ताकत अुसमें लगेगी और वह कार्य जल्द से जल्द हो जायगा। अुसके बाद नये काम की कल्पना सूझेगी। तब तक भीन्न-भीन्न पक्षवाले अपने वीचार का प्रचार करते रहें की आगे क्या-क्या करना है। वे अुसके बारे में लोगों को तैयार करें, परंतु जो कार्य सरकार की तरफ से अुठाये जायें, वे अैसे हों की जीसमें सब पक्ष वालों की सम्मती हो। अैसा करने में अगर प्रगती जल्दी न हो, तो भी वह करने लायक है, क्योंकी देश को सबसे ज्यादा जरूरत अीस बात की है की जो कुछ काम कीया जाय, वह सबकी अनुमती से और मजबूत कीया जाय, ताकी अुसके आधार से हम आगे बढ़ सकें।

अीस तरह अगर वीचार हों, तो भारत की ताकत बहुत बढ़ेगी, अन्यथा सबकी शक्ती अेक-दूसरे के दोषों के दर्शन करने में और वे दोष लोगों के सामने रखने में खर्च होगी। अपने अीस देश में अनेक प्रकार के भेद तो पहले से ही है, अुनमें पक्ष-भेद अेक नया भेद आ गया। अुसके कारण गांव-गांव के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं।

(चीन्नमन्नूर, मदुरा, १६-१२-५६)

हर परिवार से एक कार्यकर्ता

(विनोबा)

भूदान-आंदोलन इतना फैल जाने के बाद सर्व-सेवा-संघ ने एक महत्त्वपूर्ण फैसला किया कि १ जनवरी, ५७ से प्रांत-प्रांत की और जिले-जिले की सब भूदान-समितियाँ खत्म की जायँ। बहुतों को यह प्रस्ताव सुन कर आश्चर्य हुआ, क्योंकि आजकल विचार का जो प्रवाह चल रहा है, उससे यह बिलकुल उलटी बात हुई। काँग्रेस, समाजवादी, प्रजा-समाजवादी, साम्यवादी आदि सब यह कोशिश करते हैं कि अपना संगठन हरएक फिरके में, हरएक जिले में, हरएक प्रांत में मजबूत बने। भूदान में तो बिलकुल उलटी बात हो गयी। आज के वातावरण में यह आश्चर्यकारक घटना हो गयी। सर्व-सेवा-संघ ने यह किया, क्योंकि वह चाहता है कि यह आंदोलन कुल जनता का आंदोलन बने। देशव्यापी, अहिंसात्मक, लोकक्रान्ति का कार्य संस्थाओं के ढाँचे में बद्ध रह कर नहीं हो सकता है। उसके लिए उनकी मुक्त धारा बहनी चाहिए। बड़ा परिवार है। सर्व-सेवा-संघ की तरफ से जो सम्मेलन होते हैं, करीब ३-४ हजार लोग आते हैं और बाकी प्रेक्षक के तौर पर आते हैं। वे ३-४ हजार लोग सर्व-सेवा-संघ के परिवार के लोग हैं। वह परिवार भूदान के लिए यह करेगा कि अपने परिवार की तरफ से हर जिले के लिए एक मनुष्य देगा। वह मनुष्य कोई शासन नहीं चलायेगा। उसके हाथ में कोई समिति नहीं रहेगी। वह एक सेवक होगा। इस तरह हर परिवार अपने-अपने परिवार की तरफ से एक मनुष्य दे। किसी परिवार में पाँच भाई हैं, तो चार भाई सारा कारोबार अच्छी तरह से देख सकते हैं और वे पाँचवें भाई को इस काम के लिए छोड़ सकते हैं। जो अच्छा, परिपक्व विचारवाला मनुष्य होगा, उसे अपने परिवार की तरफ से काम के लिए दिया जाय। इस तरह देश के हर परिवार की तरफ से एक-एक मनुष्य मिलेगा, तो हिंदुस्तान में ५० लाख कार्यकर्ता खड़े होंगे। अपने धर्म में तो ऐसी रचना थी कि ४०-४५ साल की उम्र के बाद पति-पत्नी को भाई-बहन के समान रहना चाहिए और घर का कारोबार लड़कों पर सौंप-कर समाज सेवा में लग जाना चाहिए। इसीको वानप्रस्थाश्रम कहते हैं। इसका मतलब यह नहीं कि जंगल में जाना, बल्कि यह अर्थ है कि समाज-सेवा करना। कुटुम्ब-सेवा तो बाकी के लोग करते ही हैं। इस तरह से हर परिवार से नहीं, लेकिन कम-से-कम हर गाँव से एक मनुष्य मिले, तो भी ५ लाख कार्यकर्ता होंगे।

यह तो छोटे परिवारों की बात हुई। कुछ बड़े परिवार भी होते हैं, जैसे स्कूल। मान लीजिये कि एक स्कूल में १६ शिक्षक हैं, तो उनका एक परिवार हो गया। वे भूदान के विचार को पसंद करते हैं, उनका अध्ययन करते हैं, तो १६ शिक्षक मिल कर अपने में से किसी एक को इस काम के लिए दे सकते हैं, जो भूदान का प्रेमी हो। हर कोई अपनी तनख्वाह में से ५ रु० देगा, तो उसके लिए ७५ रु० हो जायेंगे। याने अपने हाईस्कूल की तरफ से भूदान के पवित्र कार्य के लिए हमने एक अपने परिवार की तरफ से एक मनुष्य दे दिया। इसी तरह पंचायतें हैं, भिन्न-भिन्न रचनात्मक संस्थाएँ हैं, तो वे भी अपनी-अपनी संस्था की तरफ से एक मनुष्य, तनख्वाह के साथ, हमें दे सकती हैं। फिर उसके काम का सारा पुण्य उस संस्था को मिलेगा। जो भूदान को चाहती, ऐसी संस्थाएँ यह कर सकती हैं। यही बात यहाँ के काँग्रेस वालों के सामने रखी, तो उन्होंने प्रांतीय काँग्रेस की तरफ से एक मनुष्य दे दिया। लेकिन इसी तरह जिला-काँग्रेस-कमेटी, तालुका-कमिटी भी अपनी तरफ से एक-एक मनुष्य दे सकती है। वह मनुष्य इस काम में पड़ेगा, तो उसका पुण्य उसकी संस्था को मिल जायेगा। परन्तु वह इसमें अपने पक्ष की बात नहीं करेगा। कोई व्यापारी फर्म हो, तो वह भी अपनी तरफ से एक मनुष्य दे सकती है। इस तरह से इसके लिए देश में इच्छाशक्ति अनुकूल हो जाती है, तो जगह-जगह कार्यकर्ता खड़े होंगे। २५ लाख जनसंख्या के एक जिले के लिए हमने एक मनुष्य दिया, तो उसका उपयोग यही है कि बाकी लोग उससे सलाह पूछ सकते हैं और वह लोगों के पास जाकर तकाज़ा लगा सकता है। इतना ही उसका काम है। बाकी वह इधर-उधर घूमता रहेगा। सर्व-सेवा-संघ की तरफ से भूदान के लिए वह एक देन (contribution) होगा। बाकी यह आन्दोलन आप लोगों के हाथ में सौंपा जायेगा।

(तेनी, मदुरा, ९-१२-५६)

---

www.vinoba.in

पंचामृत

[विनोबा ने कहा–"हम विश्वमानव हैं। किसी देशविशेष के अभिमानी नहीं। किसी धर्मविशेष के आग्रही नहीं। किसी सम्प्रदाय या जातिविशेष के बन्दी नहीं। विश्व के सद्विचार-उद्यान में विहार करना हमारा स्वाध्याय होगा, सद्विचारों को आत्मसात करना हमारा अभ्यास होगा और विरोधों का निराकरण करना हमारा धर्म होगा। विशेषताओं में सामंजस्य करके विश्व-वृत्ति का विकास करना हमारी वैचारिक साधना होगी।"

इस दृष्टि से विहार करते हुए सर्वोदय के लिए जो पूरक एवं पोषक सुविचार हमारे दृष्टिपथ में आये, उनसे बना हुआ यह 'पंचामृत' "भूदान-यज्ञ" के पाठकों की सेवा में प्रस्तुत कर रहे हैं। —विमला]

श्रद्धा जीवन का बल है

श्रद्धा चाहे कुछ हो, वह चाहे जो उत्तर देती हो और चाहे जिन्हें वह उत्तर दे; पर उसका प्रत्येक उत्तर मनुष्य के सीमित अस्तित्व को एक ऐसा अर्थ प्रदान करता है जिसका अंत कष्ट, विपत्ति और मृत्यु से नहीं होता। इसका मतलब यह है कि सिर्फ श्रद्धा में ही हम जीवन के लिए एक अर्थ और एक संभावना प्राप्त कर सकते हैं। तब यह श्रद्धा क्या है?

विचार करके मैंने समझा कि श्रद्धा 'अदृश्य की साक्षी' मात्र नहीं है, सिर्फ दैवी प्रेरणा ही नहीं है, सिर्फ ईश्वर के साथ मनुष्य का संबंध ही नहीं है; यह सिर्फ उन बातों को मान लेना ही नहीं है, जो बतायी गयी हों, यद्यपि श्रद्धा का आमतौर पर यही मतलब लिया जाता है। श्रद्धा तो मानव-जीवन के प्रयोजन का वह ज्ञान है, जिसके फलस्वरूप मनुष्य अपना नाश नहीं करता; बल्कि जीता है। श्रद्धा जीवन का बल है। अगर कोई आदमी जीता है, तो वह किसी-न-किसी वस्तु से श्रद्धा रखता है। यदि उसमें श्रद्धा नहीं है कि किसी चीज के लिए उसे जीना चाहिए, तो वह जी न सकेगा। यदि वह ससीम की मिथ्या प्रकृति को नहीं देख और पहचान पाता, तो वह ससीम में विश्वास करता है, यदि वह ससीम की मिथ्या प्रकृति को समझ लेता है, तो फिर उसके लिए असीम में विश्वास रखना जरूरी है। बिना श्रद्धा के तो वह जी ही नहीं सकता।

—टॉल्सटॉय

'जग में जीना दो दिन का'

जब मैं सन् १९४२ में रायपुर-जेल में कैदी था, तो मेरे वार्ड के बाजू में ही स्त्रियों का वार्ड था। वहाँ से सुबह-शाम प्रार्थना की आवाज सुनायी देती थी। उसमें एक भजन रोज गाया जाता था। उसका ध्रुव-पद था—'जग में जीना दो दिन का।' मेरा खयाल है कि वह भजन 'ब्रह्मानंद-भजनमाला' का है। इसी भाव के हमारे भक्ति-साहित्य में सैंकड़ों भजन हैं। कबीर का 'इस तन धन की कौन बड़ाई' तो प्रसिद्ध ही है। इन भजनों में सत्यांश और बोध लेने लायक कुछ भाग तो है ही। फिर भी मुझे ये विचार कुछ अखरते थे। कई दिन तक उसे सुनते रहने पर अपने साथ रहने वाले श्री तुकडोजी महाराज से मैंने एक दिन विनोद में कहा, "ये बहनें कैसे मान सकती हैं कि 'जग में जीना दो दिन का' है? मास-डेढ़ मास तो हमें ही सुनते-सुनते हो गया।" खैर, यह तो मजाक था, लेकिन उसके प्रत्युत्तर रूप निम्न भजन है :

क्यों कहो जी साधो, जग में जीना दो दिन का?
गलत खयाल न बाँधो, जग में जीवन दो दिन का।
तन लघुजीवी, जग चिरजीवी अविनाशी जीवन का।
जग के कार्यालय में तन है साधन केवल जीवन का ॥१॥
देह मरे दो दिन या युग में, अन्त नहीं वह जीवन का;
न कार्य ही नाश सभी होता, किया जो तन ने जीवन का ॥२॥
चरित-बुद्धि-वीर्य-मृत्यु से विकास जग के जीवन का।
गुण-विद्या-कीर्ति-धन-वंशज दान है तन के जीवन का ॥३॥
तन जाने से डूबी दुनिया, सत्य नहीं यह जीवन का।
तन जावे और जग डूबे, पर तू स्वरूप अक्षय जीवन का ॥४॥

—किशोरलाल मश्रूवाला

हम इंद्रियों की गुलामी से मुक्त हों

हम मानते हैं कि मनुष्य की भौतिक जरूरतें पूरी की जानी चाहिए और अच्छी मात्रा में पूरी की जानी चाहिए। परन्तु मनुष्य यह तो समझे कि इनका पूरा करना, इन्हें बेकार बढ़ाते रहना और फिर उनकी पूर्ति में निरंतर लगा रहना तथा इंद्रियों की तृप्ति के पीछे दौड़ते रहना–बस केवल यही तो मानव-जीवन का लक्ष्य नहीं हो सकता। इन इंद्रियों की क्या कभी तृप्ति भी होने वाली है? यों तो मनुष्य दौड़ता ही रहेगा, उसे कभी विश्राम नहीं मिलने वाला है। न कभी वह अपने-आपको रोक सकेगा और न उसे कभी कोई सुख मिलेगा। इसका नतीजा यह होगा कि यह भोगलिप्सा अन्य तमाम मानवोचित उदात्त प्रवृत्तियों को खा जायगी। उनका खग्रास ग्रहण हो जायगा। उपभोग्य वस्तुओं को पैदा करो और उनको प्राप्त करो, यही एकमात्र प्रवृत्ति या गुण—अगर यह गुण कहा जा सके—संसार में रह जायगा और मनुष्य के दूसरे सब शानदार सद्गुण और शुभाकांक्षाएँ सुप्त और अविकसित ही रह जायँगी। उनका विकास कुंठित हो जायगा। मनुष्य एकांगी बन जायगा और इस सभ्यता में बुद्ध, ईसा, मुहम्मद अथवा गांधी को कोई नहीं पूछेगा।

इसलिए आज मनुष्य को आत्म-संयम और अपनी आत्मा की खोज की यात्रा फिर से शुरू करनी है। जीवन-यात्रा के लिए भौतिक वस्तुओं का अपने स्थान पर मूल्य अवश्य है। लेकिन मनुष्य को जरा गहराई से अपने अन्दर पैठ कर अपने असली स्वभाव की खोज करनी चाहिए। सूक्ष्म प्रवृत्तियों का अध्ययन कर कूड़े-करकट को निकाल बाहर करना चाहिए और आत्मा का विकास करना चाहिए। इस आत्मशोधन और आत्मसंयम के रास्ते अलग हो सकते हैं। परन्तु हर हालत में मनुष्य इन इन्द्रियों की गुलामी से आत्मा को संज्ञाशून्य बना देने वाली जड़ता की पूजा से तो अवश्य ही अपने आपको मुक्त करे। जिस मात्रा में वह अपने आपको इन गुलामियों से मुक्त करेगा, उस मात्रा में उसे अवश्य ही सफलता मिलेगी। तब वस्तुओं के उत्पादन और उपार्जन के मोह संस्कृति पर हावी नहीं हो सकेंगे, बल्कि उसकी व्यापक योजना में वे अपने लिए उचित स्थान ढूँढ़ लेंगे। यह पागल दौड़ बंद हो जायगी और जीवन का नया दर्शन मनुष्य-जाति की आँखों के सामने खड़ा हो जायगा।

('सर्वोदय-संयोजन' से साभार)

भारत माता की जय !

अखण्ड भारत में पंजाब के दौरे पर गये पंडित जवाहरलाल नेहरू को दर्शनाभिलाषी हजारों ग्रामीणों ने घेर लिया और 'भारत माता की जय' के गगनभेदी नारे से उनका स्वागत किया।

नेहरूजी ने तत्काल पूछा—इसका क्या मतलब?

उनकी समझ में कोई उत्तर न सूझा; वे मौन रहे।

नेहरूजी ने पुनः आग्रह किया—किस माता की जय-जयकार आप लोगों ने की है? आखिर वह माता कौन है, यह तो बताइये।

एक किसान ने हिम्मत की और आगे बढ़ कर बोला—यह धरती है, पृथ्वी माता है, जिसकी जय हमने मनायी है।

नेहरूजी ने फिर पूछा—किसकी धरती, किसकी जमीन? क्या आपने अपने गाँव की जमीन की जय मनायी है, उसका अभिवादन किया है? या अपने प्रान्त की, या देश की (भारत की) या समूचे संसार की?

बेचारे गाँव के किसान! वे क्या जवाब देते? चुप ही रहे। और तब कुछ लोगों ने नेहरूजी से बहुत ही नम्रतापूर्वक अनुरोध किया—आप ही हमें समझाइये। हमारी समझ में तो कुछ नहीं आ रहा है।

नेहरूजी ने उनका आग्रह स्वीकार कर लिया। फिर उन्होंने बताया कि "भारत माता हमारी मातृभूमि है, जिसकी हम सब सन्तान हैं; हम नहीं, बल्कि इस देश के उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम; सब भागों में बसने वाले लोग उसकी सन्तान हैं। आप जब भारत माता की जय बोलते हैं, तो उसका आशय यह होता है कि आप भारत में बसने वाले उन सारे लोगों की जय मनाते हैं, जो भारत माता की सन्तानें हैं।"

www.vinoba.in

"और क्या आप जानते हैं कि, ये सन्तानें हैं कौन ? नहीं जानते, तो सुनिये। ये और कोई नहीं, हम ही सब हैं—आप और मैं। इसलिए जब आप भारत माता की जय कहते हैं, तो अपनी ही जय मनाते हैं और इसके साथ ही इस विशाल देश में बसे सभी भाई-बहनों की जय मनाते हैं। यह बात हमेशा याद रखें कि भारत माता और कोई नहीं, बल्कि भारत के निवासी ही हैं और भारत माता की जय का अर्थ है—यहाँ के निवासियों की जय। बोलिये भारतमाता की जय।"

ध्यानपूर्वक नेहरूजी की बातें सुनने के बाद उन्होंने कहा—"आपका कहना बिल्कुल ठीक है।

ज्ञान की इस नयी ज्योति से उनके चेहरे खिल उठे।

('जवाहरलाल नेहरू' से साभार) —फ्रैंक मोरेस

तब तक भीषण युद्ध होते रहेंगे

आज हम एक मोड़ पर खड़े हैं। जिस रास्ते पर अब तक दुनिया चलती थी, उसे छोड़ कर अब उसे दूसरी राह अख्तियार करनी पड़ेगी। पुराने आचार-विचार, पुरानी परंपराएँ और संगठन टूटेंगे और नये उनकी जगह लेंगे। यह नयी राह राहत की होगी या आज से भी ज्यादा कठिन और मुसीबत की होगी, यह कहना मुश्किल है, किन्तु इसमें कुछ शक नहीं कि एक नये युग का प्रवर्तन होने जा रहा है। सन् १९१४-१९ के रक्त-स्नान के बाद भी दुनिया न सँभली। आज वह पुराना इतिहास फिर से दुहराया जा रहा है। मानव-सभ्यता आज फिर खतरे में है। चारों ओर पाशविकता का राज्य है, आंतर्राष्ट्रीय संबंधों में किसी बात का लिहाज और संकोच नहीं रह गया है और जीवन के ऊँचे आदर्श लुप्तप्राय हो रहे हैं। अगर दुनिया बदलती है, तो हमारा देश भी इन बड़ी तब्दीलियों से अछूता न रह जायगा। अगर दुनिया पर तबाही आयी, तो हम भी तबाही से बच न सकेंगे और यदि दुनिया में नया उजाला हुआ और एक ऐसा सामाजिक और आर्थिक सिलसिला कायम हुआ, जिससे मानवता की प्यास बुझने वाली है, जिसके जरिये जनता की आर्थिक, सामाजिक और आध्यात्मिक जरूरतें पूरी होने वाली हैं, तो हम भी इस तरक्की में साझेदार होंगे। अतः दुनिया में आज क्या हो रहा है, इसके प्रति हम उदासीन नहीं रह सकते। आंतर्राष्ट्रीय जीवन की धार से अलग रह कर न हम जिंदा ही रह सकते हैं और न तरक्की ही कर सकते हैं। इसलिए हमको इस बात के विचारने की जरूरत है कि दुनिया पर यह संकट क्यों आया और इसका अंत कैसे हो सकता है ?

समाजवाद ही इस सवाल का संतोषप्रद जवाब दे सकता है। युद्ध इसीलिए होते हैं कि मुट्ठी भर धन-कुबेर समाज की सम्पत्ति पैदा करने वाले समुदाय का आर्थिक शोषण करना चाहते हैं। उनको अपने मुनाफे से मतलब। वे अपने वर्ग के स्वार्थ को देश के स्वार्थ पर भी तरजीह देने को तैयार हैं। न उनकी कोई मातृभूमि है, न पितृभूमि। मुनाफा कमाने के लिए वे राष्ट्रों को लड़वा देंगे और लाखों देशवासियों की हत्या का पाप अपने ऊपर लेने से न हिचकिचायेंगे। मुनाफा उनके लिए सर्वोपरि है। वही उनका ईश्वर और धर्म है। यह अमिट सत्य है कि जब तक पूंजीवादी प्रथा कायम है तब तक संसार में भीषण युद्ध होते रहेंगे।

—आचार्य नरेंद्र देव

समाजवादी समाज कैसे ?

मेरे विचार से समाजवादी आधार पर संघटित समाज का स्वरूप ऐसा होना चाहिए, जिसमें आर्थिक समानता इस हद तक अवश्य ही हो कि कोई परिवार इतना ऊँचा न उठ जाय और कोई इतना नीचे न गिर जाय कि उचित आधार पर दोनों का मेल न हो सके। यह जरूर है कि ऐसे समाज में भी रुचि एवं हितों की विभिन्नताएँ रहेंगी और वे सामान्य रूप से सबको एकसाथ रखने में रुकावटें डालेंगी, किन्तु आर्थिक वैषम्य के कारण पारस्परिक सम्बन्धों में जो व्याघात उपस्थित होता है, वह इससे बिलकुल अलग चीज है। इस दिशा में हम चाहे जितने भी यत्नवान हों, यह निश्चित है कि वर्ग-विषयक प्रचलित विषमताओं को दूर कर समानता के आधार पर नये समाज की स्थापना में काफी समय लगेगा। इसमें सन्देह नहीं कि ये बाधाएँ बड़ी जबरदस्त हैं और उन्हें आसानी से पार कर पाना मुश्किल है, विशेषतया ऐसे समाज में तो और भी दिक्कत है, जहाँ अशिक्षा एवं दरिद्रता के शिकार किसानों तथा शिक्षितों के बीच, जो परम्परागत तरीकों से चिपके हुए हैं, अलगाव की गहरी खाई पड़ी है। किन्तु यही नहीं, उन्नत या विकसित कहे जाने वाले देशों में भी, जहाँ सामान्य लोगों को इस बात की अधिक सुविधा है कि वे ऊँचे कहे जाने वाले तबकों के बीच अपने को प्रविष्ट कर लें, आर्थिक विषमताओं की दुर्भेद्य दीवार आसानी से तोड़ पाना हँसी-खेल नहीं है।

हम यह समझते हैं कि समाजवादी समाज की स्थापना हँसी-ठट्ठा नहीं है और न जादू की छड़ी घुमा देने से एक दिन में यह हो ही जायगा। आर्थिक और राजनीतिक अधिकार एक वर्ग के हाथ से छीन कर दूसरे के हाथ में दे देने मात्र से समाजवाद नहीं हो जायगा। वैसे तो समाजवाद असली रूप में तभी आयगा, जब अधिकार-परिवर्तन हो। समाजवादी ढाँचा खड़ा करने के सिलसिले में सबसे पहली बात यह होनी चाहिए कि सबके लिए समान रूप से एक सामान्य सांस्कृतिक आधार हो तथा जीवनयापन की एक सामान्य विधि हो और इसकी नींव में हो शिक्षा, अर्थ, राजनीति एवं समाजिक व्यवस्था की एकरूपता। यह नितान्त आवश्यक है कि ऐसी एकरूपता समाजवादी ढाँचे के समाज में ही नहीं वरन् सर्वत्र हो। दूसरे देशों की ओर से आँखें मूँद कर किसी एक देश में पूर्ण रूप से समाजवाद की स्थापना नहीं की जा सकती। प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति के मार्ग में आने वाली बाधाओं के निवारण में जम कर प्रयत्न करने तथा विज्ञान की प्रगति के फलस्वरूप आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में उपलब्ध सुविधाओं का लाभ सबको कराने से ही समाजवाद की प्राप्ति सम्भव है। आवश्यकता एवं अज्ञान के विरुद्ध जम कर लोहा लेने से ही इस कार्य में सफलता प्राप्त की जा सकती है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए हमें सभी रचनात्मक उपायों का अवलम्बन करना पड़ेगा। इसका अर्थ यह हुआ कि इस लक्ष्य की सिद्धि के लिए मनुष्य की सद्प्रवृत्तियों को जगा कर उसके सामने आदर्श का स्वरूप उपस्थित करना होगा। यद्यपि यह संघर्ष, मुख्यतः मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण एवं अत्याचार के विरुद्ध होगा, जिसमें सभी देशों के लिए अभावपीड़ितों को अपेक्षाकृत अधिक भौतिक सुख-सुविधाओं की प्राप्ति हो, किन्तु हमारा लक्ष्य यह भी है कि मानव-जीवन की सद्वृत्तियों को पहचाने और उच्च विचारों तथा पारस्परिक स्नेह एवं सौहार्द को अपने जीवन में ढालने का प्रयत्न करें।

प्रत्येक सच्चा समाजवादी यह बात जानता एवं अनुभव करता है। परन्तु सच बात बात यह है कि हम यह स्पष्ट बात इसलिए कहने का साहस नहीं करते कि लोग इसे व्यर्थ की बकवाद न मान लें। आदर्श की बात पर कुछ समाजवादी कहे जाने वाले लोग इसलिए नाक-भौं सिकोड़ते हैं कि उनकी बातें अन्यथा न समझ ली जायँ। जो कुछ भी हो, संसारव्यापी समाजवाद की कल्पना चरितार्थ ही नहीं हो सकती, यदि उसमें नैतिकता की अच्छी पुट न हो। आखिर हम संसार को समाजवादी ढाँचे में ढालना ही क्यों चाहते हैं ? इसीलिए तो कि हम ऐसा मानते हैं कि सामाजिक व्यवस्था का कोई भी अन्य प्रकार विश्वबन्धुत्व और मानव के मौलिक अधिकारों की बात से मेल नहीं खाता।

('वर्ल्ड सोशॅलिज्म रीकन्सिडर्ड' से साभार) —जी. डी. एच. कोल

साम्यवाद से आत्मवाद बड़ा है

एक दिन किसीने भगवान् बुद्ध से प्रश्न किया कि आप महान् क्यों हैं ? भगवान् ने उत्तर में कहा कि भाई मैं इसलिए महान् नहीं कि मैंने किसी प्रकार की सिद्धि पायी है, किंतु मेरी महत्ता का यही कारण है कि मैंने स्वप्न में भी किसीका अहित नहीं चाहा, मैंने किसीको क्लेश या अशांति नहीं पहुँचायी, किसीकी ओर मैंने क्रोध, हिंसा, ईर्ष्या या द्वेष की दृष्टि से नहीं देखा। मैंने हमेशा दुःखियों के दुःख को पहचान कर सहानुभूति से आश्वासन देने का प्रयत्न किया है।

बुद्ध भगवान् के इस उच्च विचार को, दिव्य भावना को यदि हम समझ सकें और परस्पर प्रेम रखें, क्रोध का क्षमा के बल प्रतिरोध कर अपकार का बदला उपकार से दें, तो सर्वत्र शांति-ही-शांति है। प्रत्येक व्यक्ति को पहले स्वयं सुधरने का प्रयत्न करना चाहिए। जीवन-निर्माण के हेतु जितना हो सके, उतना योगदान देना चाहिए। इससे राष्ट्र का भला होगा। यदि समाज में एक आदमी भला हो जाय, तो एक बुरा आदमी कम हो जायगा। वैसे ही एक व्यक्ति जब नैतिक बल पर खड़ा हो जायगा, तब पतन के इतिहास की वहीं ही इतिश्री होगी।

आज समाज में अनेक वाद हैं। वे सब अधिक हानिकर नहीं। परन्तु उनमें एक आधारभूत कमी है। वह यह है कि वे कुछ सामाजिक नियमों द्वारा समाज में सुख देना चाहते हैं। पर समाज का सुख व्यक्ति को बदलने से होता है। एक-एक व्यक्ति यदि अच्छा हो जाय, तो समाज में बुरे नियम अपने आप ही टिक नहीं सकते। इसीलिए तो कहता हूँ कि व्यक्ति का चारित्रिक उत्थान करो। व्यक्ति में आत्मानुशासन और धर्मानुशासन लाओ। समाज अपने आप बदल जायगा, शांति स्वयं आकर तुम्हारे पैरों पर लोटेगी। सुख मचल-मचल कर तुम्हारे गले लगेगा। कितने ही बड़े-बड़े साम्राज्य जायँ, किन्तु उस देश की फहराती हुई ध्वजा को कोई उतार

www.vinoba.in

नहीं सकता, जब तक कि वह देश नैतिक बल से सम्पन्न है। जो दूसरों को मारने के लिए जाता है आखिर उसे भी तो शांति चाहिए। उस देश की रक्षा होती है जिस देश में संतों की प्रचुरता है। उसकी संस्कृति कभी नहीं मिट सकती। हिंसात्मक देश कभी अहिंसात्मक देश को हानि नहीं पहुँचा सकता।

हमारे देश में फिर से स्वर्णयुग आयगा, जब प्रत्येक भारतीय का जीवन सच्चे योग, धर्म, आध्यात्मिकता और संन्यास से निखर उठेगा, जब हम सच्चे संन्यासी बनेंगे। संन्यासी उसे ही कहते हैं, जिसका शरीर कर्तव्य का प्रतिपालन करते हुए भी मन सदा भगवद्-चिंतन में तल्लीन रहता है; मन को संयमित रख कर वह अपने कर्तव्य का प्रतिपालन भी यथार्थ रूप से करता है, जो स्वप्न में भी पर-धन को स्पर्श नहीं करता। संन्यास को साकार करने के लिए महात्माओं के उपदेशामृत का पठन, श्रवण एवं मनन करना चाहिए। संन्यासी साम्यवाद नहीं, आत्मवाद को मानता है। साम्यवाद तो सबकी सत्ता अलग मान कर सबको मिल कर रहने को कहता है। यह तो व्यक्ति की रोटी की ही समस्या हल करता है परन्तु संन्यासी का आत्मवाद तो कहता है कि हम सबमें एक ही आत्मा है—हम सब एक ही शरीर के अनेक अंग की भाँति हैं। वह व्यक्ति की केवल रोटी की ही नहीं, वरन् उसकी मानसिक और आत्मिक समस्या को भी हल करता है। आत्मवाद साम्यवाद से बहुत बड़ा है। आज शान्ति के लिए हमें संन्यासी के इस आत्मवाद की आवश्यकता है। सबमें एक आत्मा का दर्शन करो। जिस प्रकार जब तुम्हारे मुँह पर कोई कीड़ा बैठता है, तब तुरंत हाथ उसे उठाने के लिए चला जाता है, ऐसा ही हमारा सामाजिक प्रेम होना चाहिए। किसीको दुःख में देख कर, किसीको पीड़ित देख कर हम स्वयं चल पड़ें, यही है आत्मभावना। आत्मभावना में अहं नहीं होता। वहाँ सेवक और सेव्य का भाव भी नहीं होता, क्योंकि वहाँ तो आत्मा के नाते सब एक ही होते हैं।

—सत्यानंद सरस्वती

('जीवन साहित्य' से)

पक्षनिष्ठा या आत्मनिष्ठा ?

ब्रिटिश पार्लमेंट के विरोधी पक्ष के नेता श्री गेटस्केल ने हाल ही में एक अपूर्व प्रस्ताव किया। उन्होंने कहा कि यदि टोरी पक्ष के सदस्य मौजूदा प्रधानमंत्री को हटा कर उसकी नीति को उलट दें, तो हम नये टोरी प्रधानमंत्री का समर्थन करेंगे। जो लोग सर अण्टनी का समर्थन करते हैं, उन पर इस प्रस्ताव का कोई असर नहीं होगा। लेकिन जिनको सर अण्टनी की नीति के बारे में गंभीर संदेह है, उनकी क्या स्थिति होगी?

स्वाभाविक रूप से उनकी पहली प्रतिक्रिया क्रोध की होगी कि—देखो, यह हमारा दुश्मन हमको फुसला कर हमारी पक्षनिष्ठा भंग करना चाहता है। पोर्ट सैयद से इधर जो समाचार आये हैं, उनसे उनके मन की बेचैनी कुछ कम हुई होगी।

परन्तु फिर भी संकट की घड़ी अभी बीती नहीं है। हमारी लोकशाही में जो मसला सबसे ज्यादा हैरान करने वाला है, उस पर यह घटना विदारक प्रकाश डालती है। मसला यह है कि पार्लमेंट के सदस्य का असली कर्तव्य क्या है? उसको अपने पक्ष के साथ कब तक चिपटे रहना चाहिए? अपने मतदाताओं की बात कहाँ तक माननी चाहिए? दूसरी सारी बातों को भूल कर, उसे अपनी बुद्धि का और अपनी आत्मा का निर्णय ही कहाँ तक प्रमाण मानना चाहिए?

रानी साहिबा ने हाल ही में जो भाषण किया, वह एक और दर्दनाक मसला उन टोरी सदस्यों के लिए पेश करता है, जिन्होंने फाँसी की सजा रद करने के पक्ष में अपना मत दिया था। क्या वे अपने मत पर डटे रहें? या पार्टी के पीछे जायँ?

जब-जब यह सवाल पेश होता है, तब-तब उसका एक बना बनाया जवाब होता है। यंत्र में इकन्नी डालते ही अपने आप टिकट बाहर आता है। उसी तरह इस सवाल के जवाब में बर्क का वह सूत्र बाहर आता है कि पार्लमेंट का सदस्य एक प्रतिनिधि है, जो अपनी बुद्धि के निर्णय के मुताबिक राय देता है। वह कोई मुनीम नहीं है, जो अपने मतदाताओं की हिदायतों पर अमल करे।

ब्रिस्टॉल के मतदाता जब बर्क को वेस्ट मिन्स्टर (पार्लमेंट) के लिए भेज रहे थे, तब उसने उनसे कहा—"यह सच है कि आप एक सदस्य को चुनते हैं, लेकिन जब आप एक बार उसे चुन देते हैं, तो वह ब्रिस्टॉल का सदस्य नहीं रहता। वह पार्लमेंट का सदस्य हो जाता है।" आपका यह ख्याल हो सकता है कि इस सूत्र से पार्लमेंट के सदस्य को आचार-स्वातंत्र्य का पट्टा ही मिल जाता है, लेकिन दूसरे एक मौके पर बर्क ने कहा था—"स्वतंत्र देश में पार्टियाँ सदैव रहेंगी।"

मेरी समझ में अब बर्क की बात पर फिर से विचार करने का समय आ गया है। अब हमें सोचना चाहिए कि इस जमाने में पार्लमेंट के सदस्य की भूमिका क्या है? बर्क के जमाने के साथ आज के जमाने का कोई मुकाबला नहीं है।

बर्क के ज़माने में और करीब-करीब हमारी शताब्दि के आरंभ तक पार्टियों की सीमा-रेखाएँ सख्त नहीं थीं। इसलिए पार्लमेंट में मतदान से हेरफेर होने की गुंजाइश रह जाती थी। आज जब कि लोकसभा में यह सुपरिचित आवाज गूँजती है कि 'हाँ-वाले दाहिने जायँ' और 'ना-वाले बाँयें जायँ', तो हरएक जानता है कि दशमलव के दूसरे अंक तक परिणाम क्या निकलेगा।

और यह सब हमारी करतूत है। चुनाव के वक्त कोई भी उम्मीदवार व्यक्ति की हैसियत से अपने भरोसे एक हजार वोट से ज्यादा कीमत का नहीं है, चाहे फिर वह कितना ही प्रतिभाशाली क्यों न हो। हम व्यक्तियों को वोट नहीं देते। पार्टियों को देते हैं। नेताओं के एक समुदाय को वोट देते हैं, जिसने एक खास कार्यक्रम पूरा करने की प्रतिज्ञा की हो। जिस व्यक्ति को हम वोट देते हैं, उससे हमें यह आशा होती है कि यदि वह पार्लमेंट में पहुँच जाय तो वह अपना मत उन नेताओं को और उनके कार्यक्रम को देगा और जब अपने किसी रिश्तेदार की पेन्शन बढ़ानी हो तभी अपनी अलग राय देगा।

पार्लमेंट के सदस्य के लिए यह नैतिक बंधन है। हमारे वोट माँगते समय वह यह अहद करता है कि मैं अपनी पार्टी और उसके कार्यक्रम का समर्थन करूँगा। आज का शासन इतना पेचीदा है कि अगर आम तौर पर सदस्य इस तरह का व्यवहार न करे तो गड़बड़ी हो जाय।

तो क्या फिर हमेशा आचरण का यही सूत्र होना चाहिए कि चाहे सच हो या झूठ, मेरे लिए मेरी पार्टी सही है। पार्टियों के हिपों ने क्या पार्लमेंट की नसों में खून का प्रवाह बिलकुल रोक दिया है?

हम बुनियादी सचाई को अपनी आँखों से ओझल कभी न होने दें। पार्लमेंट के सदस्यों का बहुमत समर्थन करता रहे, तो विश्वविद्यालय की उपाधि-प्राप्त मर्कटों का मंत्रिमंडल भी बरकरार रह सकता है। सदस्यों का बहुमत अगर खिलाफ हो, तो अफलातूनों का मंत्रिमंडल भी एक दिन नहीं ठहर सकता।

लेकिन व्यक्तिगत सदस्य के लिए एक चोर-रास्ता है। पिछले चुनाव में उसने चाहे जिस कार्यक्रम की हिमायत क्यों न की हो, समय के साथ नये-नये मसले पेश होते हैं और पुराने मसलों की शकल को बदल देते हैं।

बाज़ मौके पर, किसी बाँके मौके पर ऐसी सूरत पैदा हो जाती है कि चुनाव के वक्त एक खास मसले के बारे में पार्टी का नेता फलाँ रुख अख्तियार करेगा, ऐसा खयाल होता है। और जब वह उससे बिलकुल अलग तरह का रुख अख्तियार करता है, तब उसके साथियों में से कुछ समझते हैं कि यहाँ हमको बग़ावत करनी चाहिए और हम बग़ावत करने के लिए आज़ाद हैं। परन्तु उस हालत में भी यह सवाल होता है कि बग़ावत की हद क्या हो? चर्चिल, ईडन और दूसरे टोरी सदस्यों के एक समूह ने म्यूनिख के समझौते के पक्ष में वोट देने से इन्कार किया था। मान लीजिये कि उनके विरोध का नतीजा यह होता कि टोरी-सरकार के बदले मजदूर दल की सरकार आ जाती—जिस मजदूर-दल की नीति के वे और भी अधिक कट्टर विरोधी हैं—तो क्या वे उस हालत में भी म्यूनिख-समझौते के विरोध में मतदान करते?

जब श्री गेटस्केल ने सहयोग का प्रस्ताव किया, तो उनकी दृष्टि के सामने एक प्रसिद्ध पुरानी घटना रही होगी। वह पुरानी घटना है चेम्बरलेन की पराजय! सरकार का दो हजार का बहुमत क्षीण होकर इक्यासी तक उतर गया और चेम्बरलेन परास्त हुआ। फिर भी जरा उस वक्त की परिस्थिति की तरफ ध्यान दीजिये। देश एक जागतिक युद्ध की मँझधार में था। सवाल नीति का नहीं था, बल्कि इतना ही था कि उस नीति का अमल कौन करे?

श्री गेटस्केल इससे कहीं बड़े उलट-फेर की माँग कर रहे हैं। यह सच है कि श्री गेटस्केल टोरीपार्टी को सत्ता में बनाये रखने का वादा करते हैं। लेकिन एक नपे-तुले उद्देश्य के लिए। टोरियों के मन में कोई शक नहीं है कि अगर वे आज श्री गेटस्केल के प्रस्ताव को मान लेते हैं, तो थोड़े ही दिनों में मजदूर-दल की हुकूमत कायम होगी।

सरकार की नीति में इतना अधिक परिवर्तन हो सकता है कि उसके समर्थकों की जो स्वाभाविक निष्ठा है, वह भी खंडित हो जाय और वे नैतिक दृष्टि से अपने आपको विद्रोह करने के लिए स्वतंत्र मानें। परन्तु सवाल यह है कि क्या वे विद्रोह करें? यह एक ऐसा अवसर है, जहाँ बर्क का मौलिक सूत्र अपने शुद्ध और पूर्ण रूप में लागू हो सकता है।

मतदाता और समाचार-पत्र पार्लमेंट के हर सदस्य को भले ही उसका कर्तव्य जतलाते रहें, लेकिन आखिर यह सवाल उसकी आत्मा के प्रत्यय का और बुद्धि के निर्णय का ही है।

(मूल अंग्रेजी से)

—ईयान ट्रेथोवॅन

www.vinoba.in

हमारा पड़ोसी : मिनिकाय द्वीप

मिनिकाय मलाबार-तट से २३० मील दूर कन्याकुमारी की सीध में है। यह द्वीप अर्धचंद्राकार है और इसका क्षेत्रफल मुश्किल से ३ वर्गमील होगा। इसकी लम्बाई ६ मील और चौड़ाई कहीं भी आधा मील से अधिक नहीं। यहाँ का प्रकाश-स्तम्भ ८० साल पुराना और १५० फुट ऊँचा है और इसी साल अप्रैल में ब्रिटेन ने इसे भारत को सौंपा है।

द्वीप का जीवन

द्वीप के बीचोबीच गाँव बसा है। गाँव में एक पंचायत-घर है, जहाँ पर हर समय तिरंगा फहरता रहता है। गाँव का रहन-सहन प्राचीन और परम्परागत है। यहाँ एक सरकारी अस्पताल और वायरलेस स्टेशन हैं। जनसंख्या ४ हजार होने का अनुमान है, पर लगभग १ हजार पुरुष हमेशा बाहर रहते हैं और भारत या अन्य दूर देशों के बन्दरगाहों में मल्लाह का काम करते हैं। द्वीप की प्राकृतिक छटा अवर्णनीय है, पर यहाँ वनस्पति बहुत कम है। नारियल के असंख्य वृक्ष ही द्वीप के सर्वप्रमुख सौन्दर्य-प्रसाधन और आर्थिक दृष्टि से द्वीपवासियों के सर्वस्व हैं। मछली पकड़ना और नारियल के विविध धन्धे यहाँ के निवासियों की रोजी के साधन हैं।

द्वीपवासियों की सबसे बड़ी विशेषता है, उनका सफाई-प्रेम। स्त्री-पुरुष सब नियत शौच-स्थानों में ही शौच के लिए जाते हैं। बच्चों को भी नालियों और गलियों में टट्टी करने से रोका जाता है। इस शौच-नियम का उल्लंघन करने वालों के साथ कड़ाई बरती जाती है। द्वीप में पीने के लिए और नहाने-धोने के लिए अलग-अलग जलाशय हैं। पीने के पानी में कपड़े धोने या स्नान करने की घटना शायद ही कभी सुनने में आती हो। स्त्री-पुरुषों के नहाने के स्थान अलग-अलग हैं।

पैसे का मोह नहीं

द्वीपवासियों के लिए पैसा आज भी कोई बड़ी चीज नहीं। उनके सरल-सादे जीवन की जरूरतें बहुत नहीं हैं। जो हैं, वे येन-केन प्रकारेण पूरी हो जायँ, बस इतने में ही वे कुशल हैं। द्वीप का सारा व्यापार और बाहर की दुनिया से बहुत सारा व्यापार चीजों की अदला-बदली से चलता है। सम्पत्ति के लिए यहाँ किसी प्रकार के झगड़े-टंटे नहीं होते। सब लोग मिलजुल कर रहते हैं। पुलिस-दल की तो बात जाने दीजिये, सारे द्वीप में आपको एक सिपाही के भी दर्शन नहीं होंगे।

मातृशासित व्यवस्था

मिनिकाय के द्वीप-निवासी मुसलमान हैं, पर यहाँ की स्त्रियाँ गोशे में नहीं रहतीं। इतना ही नहीं, उन्हें सामाजिक और आर्थिक स्वतंत्रता भी बहुत है। द्वीप में उत्तराधिकार की व्यवस्था मातृशासित है। द्वीप की सारी भूमि सरकार की है। इस पर बने मकान ही वास्तविक सम्पत्ति कहे जाते हैं और यह भी हाल की ही चीज है। यहाँ सम्पत्ति सारे परिवार की होती है, यहाँ के कानून के अनुसार मकानों पर भी पुरुषों का अधिकार नहीं होता। मकानों की मालिक स्त्रियाँ मानी जाती हैं। पुरुषों का विवाह होने तक उनमें रहने भर का अधिकार होता है। विवाह के बाद पुरुष ससुराल में जाकर रहने लगता है।

यद्यपि द्वीप में बालविवाह का प्रचार है, फिर भी लड़कियों को अपना वर चुनने का पूरा अधिकार होता है। स्त्रियों में साक्षरता प्रायः अधिक है। सरकारी प्राथमिक स्कूल खुलने से पहिले भी स्त्रियाँ स्वयं अपने बच्चों को पढ़ाती-लिखाती थीं। पिछले आम चुनावों में पुरुषों से दुगुनी स्त्रियों ने मतदान किया। इस द्वीप में स्त्रियों को इतनी स्वतंत्रता है, जितनी भारत के किसी भी प्रगतिशील समुदाय में नहीं होती।

स्त्रियों का बोलबाला

द्वीप के नागरिक मामलों में स्त्रियों का ही बोलबाला है। हर मुहल्ले की एक महिला प्रधान होती है। ये प्रधान पंचायती घरों में जिन्हें वरंगी कहते हैं, एकत्र होकर स्थानीय, घरेलू, सामाजिक तथा आर्थिक विषयों पर विचार-विमर्श करती हैं। वरंगियों में पुरुषों का प्रवेश निषिद्ध है। पुरुषों के पंचायत-घर अत्री कहलाते हैं। पुरुषों का चुना हुआ प्रधान भूमाल कहलाता है। पुरुष अत्रियों में एकत्र होकर स्थानीय और आर्थिक समस्याओं पर बातचीत करते हैं। पर अत्रियों की इतनी मजाल नहीं कि वरंगियों के किसी फैसले को लौटा सकें।

(भारत-सरकार के प्रकाशन से)

दम्भ और अहंकार से मुक्ति

संयुक्त राष्ट्र-संघ के शिक्षा-विज्ञान-संस्कृति-संगठन-सम्मेलन में समवेत प्रतिनिधियों से उपराष्ट्रपति डॉक्टर सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने यह बात जोर देकर कही कि "जब तक लोग दम्भ और अहंकार का त्याग नहीं करते, तब तक मानव-समाज के कल्याण की बात कल्पना मात्र रह जायगी। आपने कहा कि मानव इतिहास की इस संकट-पूर्ण वेला में हमारे लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम मानव-प्रकृति के आमूल परिवर्तन के लिए कोशिश करें। इस प्रसंग में तथा पूर्व और पश्चिम, प्राचीन और अर्वाचीन के बीच सामंजस्य स्थापित करने के लिए यह संस्था जो कुछ प्रयत्न कर रही है, उसकी हम कद्र करते हैं।

"आज भी जब कि पूर्वी यूरोप, मध्य-पूर्व और अफ्रीका में अशान्ति और संघर्ष व्याप्त है और जब कि तृतीय महायुद्ध का खतरा टल नहीं गया है, हमें बहुत ही मृदुता और प्रेम के साथ काम करना चाहिए, जिससे हम इस संकट के पार जा सकें। हमें अपने आचरण से आज यह दिखा देना है कि व्यक्तियों की भाँति राष्ट्र भी स्वार्थ-विहीन होने की क्षमता रखते हैं। भविष्य के लिए जिस संघर्ष में हमें विजय प्राप्त करनी है, वह हमारे हृदय में ही छिड़ा हुआ है। आइये, आज हम अपनी मानसिक शक्तियों का इस भाँति विकास करें और हृदय इस प्रकार परिवर्तित करें कि हमारे जीवन का लक्ष्य उत्तम हो और उसका आधार भौतिकवाद न होकर आध्यात्मिकता हो। जिस घड़ी यह अवस्था उत्पन्न हो जायगी, उसी क्षण राष्ट्रों के बीच संघर्ष उसी प्रकार बीते जमाने की चीज हो जायगा, जिस प्रकार मानव-मानव के बीच का द्वन्द्व।"

(अंग्रेजी से)

हमारी बालगोष्ठी :

चुन्नू-मुन्नू-वार्ता

(शालिग्राम 'पथिक')

१

चुन्नू-मुन्नू दो लड़के थे
छोटे छोटे, भोले भाले।
गोल मटोल सलोने सुन्दर
कुछ-कुछ गोरे, कुछ-कुछ काले॥
चुन्नू-मुन्नू दो लड़के थे

२

चुन्नू बोला : मुन्नू भइया
तकली हमें कभी ना भायी।
पढ़ें लिखें बाबू बन जावें
तकली में क्या धरी पढ़ाई॥
चुन्नू-मुन्नू दो लड़के थे

३

मुन्नू बोला : चुन्नू राजा
बात कही है हीरा जैसी।
वीर बहादुर तुम भइया हो
भय की डर की ऐसी-तैसी॥
चुन्नू-मुन्नू दो लड़के थे

४

मन में आवे कह ही देना
हँसें लोग तो सह ही लेना।
पर कह कर सब भूल न जाना
उत्तर को भी मन में लाना॥
चुन्नू-मुन्नू दो लड़के थे

५

पढ़ लिख कर बाबू होने का
बुरा जमाना बीत गया है।
बिना काम जीवित रहने का
रोग बढ़ा था : क्षीण हुआ है॥
चुन्नू-मुन्नू दो लड़के थे

६

बिना काम ना कोई रहेगा।
यह अभिशाप ना कोई सहेगा॥
सब पर खेत, सभी पर काम
चुन्नू हों या मुन्नू राम॥
चुन्नू-मुन्नू दो लड़के थे

७

इसीलिए, ए चुन्नू राजा
तकली आज चलायी जाती॥
वर्ग-विहीन समाज बनाने का
तकली सामान सजाती॥
चुन्नू-मुन्नू दो लड़के थे—

---

www.vinoba.in

तमिलनाड की क्रांति-यात्रा से–

(निर्मला देशपांडे)

"१ जनवरी, '५७ का सूर्योदय याने सब कार्यकर्ताओं का उदय। हर एक को पूर्ण आजादी और पूर्ण जिम्मेवारी।"—विनोबा द्वारा एक भाई को लिखे गये पत्र का यह वाक्य उनकी चिंतनधारा की दिशा सूचित करता है। सर्व-सेवा-संघ के पलनी के तंत्र-मुक्ति, निधि-मुक्ति के प्रस्ताव के बाद विनोबाजी हर पत्र में, हर भाषण में, चर्चाओं में उस पर विवेचन करते रहते हैं। इसी बारे में गुजरात के एक भाई को उन्होंने लिखा : "व्यक्तिगत रस्सी काटने के काम को मैंने अपने जीवन में कई मर्तबा किया है। पर एक बड़े सामूहिक संकल्प में उसका प्रयोग करने की हिम्मत सब भाइयों ने एक मन से और सहर्ष की है।" अब दूसरे पत्र में लिखा : "तंत्रमुक्त होने से चिंतन मंत्रयुक्त होगा और निधिमुक्त होने से जनता-जनार्दन की सन्निधि में पहुँचेगा।"···"इन प्रस्तावों से हमारे आरोहण-कार्य में बहुत बल मिलने वाला है।···मानव-हृदय जाग्रत करने के बजाय मानवों को संगठित करने की तरफ इन दिनों बहुतों की रुचि दीख पड़ती है। चीजों को संगठित कर सकते हैं, मनुष्यों को शिक्षित कर सकते हैं। जब हम मनुष्यों को संगठित करने जाते हैं, तो हम उनकी गिनती चीजों में करते हैं। उससे विचार के व्यापक बनने की गति को हम वेग देने के बजाय कुंठित करते हैं। मैं आशा करता हूँ कि इन प्रस्तावों से आपके पाँवों की ताकत बढ़ेगी और प्रतिभा उदित होगी।"···"सर्व-सेवा-संघ ने बड़ा ही क्रांतिकारी प्रस्ताव स्वीकृत किया है। अब हमारे सब कार्यकर्ता 'सर्व-बंध-विनिर्मुक्ताः। पदं गमिष्यन्ति अनामयम्।' तो फिर बाबा की सेहत भी सुधरे बगैर कैसे रहेगी?"···"यह प्रस्ताव याने सन् सत्तावन साल के उदय का उषागीत है।"

साहित्य-प्रचार की जिम्मेवारी उठाये हुए एक भाई को बाबा ने लिखा "तंत्र-मुक्ति और निधिमुक्ति के साथ, साहित्य-प्रचार की युक्ति जोड़ दी जाय, तो नवयुग का स्फोट निश्चित ही होगा।···अगला वर्ष हमारे पूर्ण प्रयत्न का वर्ष होगा। संगठन तोड़ कर समाज को सौंप दिया, उसके साथ साहित्य-प्रचार में लगे हुए लोगों का काम बढ़ जाता है। सर्वोदय-साहित्य के लिए हर तहसील में एक स्थान होना चाहिए, जहाँ से संचालक उसे गाँव-गाँव और घर-घर पहुँचा सकेंगे। हमें यह कबूल करना होगा कि आज तक हम लोगों ने साहित्य की कद्र कम ही की है। अक्सर कर्मयोग में रत सेवक चिंतन और लेखन की तकलीफ उठाते नहीं, याने एक तरह से वे काम-चोर ही बन जाते हैं और जो कर्मयोग को जानते ही नहीं, वे व्यर्थ का ढेर भर लिखते रहते हैं और बेकार लोग उसे पढ़ते जाते हैं। हमारे सेवक भी प्रवाह के साथ, जाने-अनजाने इन बेकारों में शुमार हो जाते हैं। चिंतन, लेखन का प्रमुख अधिकार उन्हींका है, जो कर्मयोग का आचरण करते रहते हैं। उन्हें चाहिए कि वे उसे अपने हाथ से जाने न दें। भूदान-पत्रिकाओं को सुन्दर सजाने में उन्हें हिस्सा लेना चाहिए। इस तरह सजायी हुई, घर के आँगन की तरकारी घर-घर में उपलब्ध हो और लोग उस ताजी तरकारी को उसके अंदर के जीवनसत्त्वों के साथ खाकर हज़म करें।"

महाराष्ट्र से आये हुए एक भाई ने कहा कि 'लोग हमसे पूछते रहते हैं कि सरकार की उद्योगीकरण की बड़ी-बड़ी योजनाओं की आप उपेक्षा कैसे कर सकते हैं? हमारा दैनिक जीवन तो दिन-ब-दिन सरकार के बन्धनों से जकड़ा जा रहा है।' इस पर बाबा ने कहा : "२५० पौंड वजनवाला शख्स अपने ही शरीर के बोझ से दब कर मरेगा, यह क्या कहने की जरूरत है? उसी तरह ये हैड्रोजन बम वगैरा सब अपने ही बोझ से दब कर खत्म होने वाले हैं। सुन्द की गदा का प्रहार उपसुंद के सिर पर होगा, उपसुन्द की गदा का प्रहार सुन्द के सिर पर और दोनों मर जायेंगे। इस वक्त हमें यह पहचानते हुए अपना 'पॉजिटिव' (भावात्मक) काम सतत करते रहना चाहिए। लोग मुझसे पूछते हैं कि आप सरकार के बुरे कामों पर टीका क्यों नहीं करते हैं? मैं जवाब देता हूँ कि सरकार के बुरे कामों पर टीका करने की जरूरत ही नहीं है। सरकार के अच्छे कामों पर टीका करने की जरूरत है, क्योंकि उनके कारण लोगों के मन में यह भ्रम कायम रहता है कि सरकार एक अच्छी संस्था है। मैं तो उनको यही समझाता हूँ कि जिस तरह आपने राजाओं को खत्म किया, उसी तरह शासन-संस्था को भी खत्म करके सारा कारोबार अपने हाथ में लीजिये। व्यक्ति का कारोबार व्यक्ति के हाथ में रहेगा, गाँव का गाँव के हाथ में। एक 'रज्जू-सर्प' [रस्सी का सर्प] था, जिसे देख कर एक शख्स डर के मारे भाग गया, तो दूसरा उसे साँप समझ कर लकड़ी से पीटने लगा। दुनिया ने एक को डरपोक कहा, तो दूसरे को बहादुर। लेकिन वास्तव में दोनों बेवकूफ हैं। वह रस्सी है, साँप नहीं है। उस साँप को पहचानने में ही अक्लमंदी है। उसी तरह आज की परिस्थिति को पहचानते हुए हमें अपना भूदान का 'पॉजिटिव' काम करना चाहिए। सपने में हम बीमार हुए, तो क्या जग जाने पर उसके लिए दवाई लेने दौड़ते हैं? सपना समाप्त होते ही बीमारी भी समाप्त हो जाती है। हमें अंधकार के अस्तित्व को स्वीकार करके योजना नहीं करनी है, बल्कि प्रकाश की योजना करनी है।"

एक भाई ने कहा कि 'आप सतत घूमने की अपेक्षा ग्रामदान के किसी क्षेत्र को लेकर निर्माण-कार्य करके कुछ अच्छे परिणाम दिखायेंगे, तो बेहतर होगा।' इस पर बाबा ने कहा : 'ग्रामदान याने क्रांति है। उसमें मूल्य-परिवर्तन होता है। आजके समाज के स्वामित्व के मूल्य का परित्याग करना, स्वामित्व-विसर्जन करना, याने क्रांति है। निर्माण-कार्य याने कोई क्रांति नहीं, यद्यपि वह उपयुक्त कार्य जरूर है। बाबा एक जगह बैठेगा नहीं, वह तो आग लगाते हुए घूमता रहेगा। हमारा काम आग लगाने का है, खेती करने का नहीं। हम आग लगायेंगे और फिर उस जमीन में बोने का काम दूसरी रचनात्मक संस्थाएँ करेंगी।"

यात्रा में अक्सर लोग फल-फूल, सूत की गुण्डियाँ आदि लेकर बाबा का स्वागत करने के लिए आते हैं। लेकिन एक दिन एक भाई ने पृथ्वी का 'ग्लोब' भेंट दिया। उसे सहर्ष स्वीकार करते हुए बाबा ने कहा : "बच्चों को इससे कितनी अच्छी तरह ज्ञान हो सकता है! हम भी बच्चे ही हैं, इसलिए हमें यह पसंद है।" बाबा के कमरे में उनके आसन के निकट एक छोटे से टेबुल पर ॐ का चित्र रहा करता है। उन्होंने पृथ्वी के ग्लोब को उसके पास रखने के लिए कहा और कहा 'जग और जगदीश साथ हैं।" तबसे उस टेबुल पर दोनों विराजमान दिखायी देते हैं।

विनोबाजी की यात्रा तमिलनाड के मदुरा जिले में चल रही है। यहाँ शिक्षा का प्रचार काफी है। इसलिए यहाँ के कार्यकर्ता उम्मीद नहीं करते थे कि यहाँ ग्रामदान हो सकेगा। लेकिन विनोबाजी ने कहा कि 'मदुरा में खूब ग्रामदान होगा।' और अब दस-पंद्रह दिनों से यहाँ ग्रामदान की हवा तेजी से फैल रही है। ग्रांधीग्राम में रहने वाले एक अमेरिकन भाई श्री. कैथान्, जो आजकल ग्रामदान का विचार समझाने के लिए गाँव-गाँव घूम रहे हैं, विनोबाजी को अपना अनुभव सुना रहे थे कि मुझे यह देख कर आश्चर्य होता है कि हम जहाँ-जहाँ जाते हैं ग्रामदान का विचार समझाते हैं और वह लोगों को बहुत जँचता है और वे ग्रामदान देने के लिए राजी हो जाते हैं।" मदुरा जिले में अब तक २८ ग्रामदान मिले हैं और तमिलनाड में कुल ३७ ग्रामदान मिले हैं।

एकादश व्रतों में सर्वोदय

सत्य—भूतमात्र की एकता।
अहिंसा—एकता की अनुभूति की सामूहिक उपासना।
अस्तेय—शोषणरहित अर्थ-व्यवस्था।
अपरिग्रह—सामूहिक स्वामित्व—अर्थात् वैयक्तिक स्वामित्वभाव का निरसन।
ब्रह्मचर्य—स्त्री-पुरुष भाव से ऊपर उठ कर मनुष्य-भाव से व्यवहार करना।
शरीर-श्रम—श्रमाधारित समाज-व्यवस्था, श्रम सौदे की चीज नहीं। श्रम का मूल्य नहीं, जैसे इज्जत का नहीं है।
अस्वाद—मानव मात्र के स्नेह में से सहज सधने वाला मधुर संयम।
सर्वत्र भयवर्जन—विश्वमानवता।
सर्व-धर्मसमानत्व—बुद्धियोग = विचारयोग। विचार अपौरुषेय होता है, ग्रन्थबद्ध नहीं, पंथबद्ध नहीं, विभूतिबद्ध नहीं, आकाशवत्, अनाक्रमक, सर्वव्यापी विचार की सत्ता का भान।
स्वदेशी—समाज की इकाई, ग्राम-परिवार। ग्रामों का स्वावलम्बन, परस्परावलम्बन, सर्वसम्मति पर आधारित शासन याने लोकनीति।
स्पर्शभावना—आत्मा की एकता का भान, शरीर के मिथ्यात्व का ज्ञान।

इस प्रकार एकादश व्रतों में सर्वोदय अर्थात् आज का युगधर्म समाया है।

* * * *

सर्वोदय यही बुद्ध का संदेश है—"बहुजनहिताय बहुजनसुखाय"। इसमें 'बहु' शब्द संख्यावाचक नहीं है। इसका संकेत 'सर्वजनहिताय' की ओर है। ऐसा अर्थ नहीं होता, तो अहिंसा का विचार सामने आता ही नहीं।

'लोकानुकंपाय' में अनुकम्पा शब्द है। अनु = साथ (with together) सहानुभूति + करुणा = अनुकम्पा। जिस समाज में वर्ग-भेद रहेंगे, वहाँ अनुकम्पा के लिए अवकाश नहीं। वेदान्त का अद्वैत + बुद्धि की अहिंसा = आज का युगधर्म बनता है।

—विमला

www.vinoba.in

भूदान-आंदोलन के बढ़ते चरण

पटना जिले में सामूहिक पदयात्रा की प्रगति

गांधी-जयंती, २ अक्तूबर से पटना जिले में सामूहिक पदयात्रा का श्रीगणेश किया गया। जिले के सभी भूदान-कार्यकर्ताओं के अतिरिक्त महिला चरखा-समिति, पटना की शिक्षार्थी बहनों ने अपनी शिक्षिका श्री मनोरमा बहन तथा माधुरी बहन के नेतृत्व में १७ अक्तूबर से ३० नवम्बर तक पदयात्रा में भाग लिया। विशेषतया श्री मनोरमा सिन्हा के नेतृत्व में बहनों की एक स्वतंत्र टोली ने राजगृह में बहुत सराहनीय कार्य किया।

२ अक्तूबर से ७ दिसम्बर तक अस्थावाँ, गिरियक तथा सिलाव थानों में सामूहिक पदयात्रा का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ तथा बिहार थाना के दक्खिनी भाग में पूर्व-तैयारी का कार्यक्रम चला। इस अवधि में कार्यकर्ताओं की ६ टोलियों ने १३१५ मील की पदयात्रा कर ५१४ गाँवों में भू-दान का संदेश पहुँचाया। इन टोलियों को ५०६ दाताओं के द्वारा ५८३) का संपत्तिदान तथा २०० मन अन्न का दान मिला, ९३ दाताओं के द्वारा करीब २० एकड़ भूदान प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त ९६४) की साहित्य-बिक्री हुई तथा "भूदान-यज्ञ" के ४५ ग्राहक बने। अस्थावाँ थाना के पदयात्रा-शिविर में बिहार भू-दान यज्ञ-समिति के संयोजक श्री लक्ष्मीबाबू उपस्थित रहे तथा पदयात्रा में भी सम्मिलित हुए। राजगृह-शिविर में श्री श्यामसुन्दर प्रसाद, मंत्री-सर्वोदय-आश्रम, सोखोदेवरा, गांधी-तत्त्वप्रचारक श्री रमावल्लभ चतुर्वेदी तथा सर्व-सेवा-संघ के श्री गोविन्दराव आदि के भू-दान, सर्वोदय-विचार के विभिन्न पहलुओं पर भाषण हुए। इनके अलावा राजगृह के धर्माचार्य श्री हंसदेवजी मुनि तथा स्वामी कूटस्थानन्दजी का वैदिक तथा बौद्ध-संस्कृति एवं सर्वोदय-आदर्श पर विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान हुआ।

सर्वोदय-आश्रम, रानीपतरा में पूर्णियाँ जिला भू-दान समिति की बैठक ९ दिसम्बर को श्री तारिणी प्रसाद निर्झरजी के सभापतित्व में हुई, जिसमें जिले के गांधी स्मारक-निधि के सभी ग्राम-सेवक, जिला-भूदान-समिति के सदस्य और कार्यकर्ता तथा आश्रम-परिवार के सदस्यों के अतिरिक्त जिले के प्रमुख काँग्रेस कर्मी भी उपस्थित थे। सन् '५७ तक पूर्णियाँ जिले की भूदान में प्राप्त जमीन का वितरण करने और सन् '५७ की अहिंसक क्रांति की रूपरेखा पर श्री वैद्यनाथ प्रसाद चौधरी का भाषण हुआ। उनके भाषण से प्रभावित होकर २९ भूदान-कार्यकर्ताओं ने, जो पहले से भूदान-समिति में काम करते थे पूरे '५७ तक भू-क्रांति को सफल करने का संकल्प लिया।

इस सिलसिले में गांधी-स्मारक-निधि के ग्राम-सेवकों तथा भूदान-कमिटी के सभीनों ने निधि-मुक्त कार्यकर्ताओं के आवश्यक दैनंदिन खर्च की पूर्ति का वचन दिया। बैठक में करीब दो सौ कार्यकर्ताओं ने भाग लिया।

पूर्णियाँ सदर थाना के जगैली ग्राम में थाने की सामूहिक पदयात्रा का समाप्ति-समारोह श्री कमलदेव नारायण सिंह की अध्यक्षता में हुआ। १० नवम्बर से ८ दिसम्बर तक पूर्वतैयारी और सामूहिक पदयात्रा का काम चला। फलस्वरूप १४६ गाँवों में भूदान का संदेश पहुँचाया गया। ३६ दानपत्रों द्वारा १३ एकड़ भूमि की प्राप्ति हुई। ११४३ रु० के ३५३ सम्पत्तिदान-पत्र मिले। २७ ग्राहक बनाये गये। २३४ रु० की साहित्य-बिक्री हुई। ८४ मन ३८ सेर अनाज का दान मिला। ४५३ मील की यात्रा हुई। १६८ आदाताओं में २६५ एकड़ भूमि वितरित की गयी।

क्रांति की चिनगारियाँ

—सन् '५७ के लिए 'चतुर्विध निष्ठा' का आवाहन विनोबा ने किया। उनके अनन्य भक्त श्री दत्तोबा दास्ताने, जो उनके मंत्री रह चुके हैं और भूदान शुरू होते ही जिन्होंने अपनी सारी जमीन विनोबा को अर्पण कर दी थी, 'अपरिग्रह व्रत' के परिपूर्ण पालन-हेतु अब अपना प्राविडंड फंड लेना छोड़ दिया है और अब तक का सारा जमा प्राविडंड फंड भी परंधाम-विद्यापीठ को अर्पण कर दिया है।

—ग्राम-सेवा-मण्डल, गोपुरी, वर्धा के कार्यकर्ताओं ने निश्चय किया है कि वे सब मिल कर एक भूदान-कार्यकर्ता का पूरा आर्थिक भार उठा लेंगे।

—संवाददाता द्वारा

संवाद सूचनाएँ :

भूदान-आंदोलन के लिए करीब करीब हर भाषा में एक-एक पत्रिका प्रकाशित होती है। तेलुगु में भी "भूदानमु" शीर्षक से पाक्षिक पत्रिका हैदराबाद दक्षिण से निकल रही है, जिसके संपादक श्री आर. के. रामलिंगा रेड्डी हैं। हिंदी भाषी प्रान्तों में काफी तेलुगु भाई-बहन रहते हैं। उन तक इस पत्रिका का परिचय हिंदी पाठक पहुँचाने की कृपा करें।

तेलुगु भूदान-साहित्य यहाँ से प्राप्त होगा। "भूदानमु"का चंदा ३ रुपया है।

भूदान-कुटीर, हैदराबाद द० —रामकृष्ण धूत, प्रकाशक

सन् १९५७ के लिए सर्वोदय-स्वाध्याय-योजना

सन् '५७ के लिए सर्वोदय-स्वाध्याय-योजना नये रूप में शुरू की जा रही है। सन् '५५ की जो सर्वोदय-स्वाध्याय-योजना थी, उसमें एक तो पोस्टेज-खर्च अत्यधिक हुआ और ग्राहकों तक साहित्य पहुँचने में काफी गड़बड़ी रही, सेट तैयार होने पर बेचने की १९५६ वाली योजना में यह दोष रहा कि कोई भी नयी किताब तैयार होते ही ग्राहकों तक नहीं पहुँच पाती थी। इन सारे दोषों या कमियों से बचने के लिए विचार करने के बाद सन् '५७ के लिए यह योजना बनायी जा रही है, जिसकी रूपरेखा इस प्रकार है।

सदस्यों के लिए

(१) यह योजना १ जनवरी '५७ से आरम्भ हो रही है। योजना-सदस्यता-शुल्क १० रुपया है। एक संस्था एक से अधिक संख्या में सदस्यता-शुल्क जमा करा सकती है, सदस्यता-शुल्क का रुपया स्थानीय प्रमाणित खादी-भंडारों और साहित्य-भंडारों में ही जमा करना चाहिए, वहीं से साहित्य भी लेना होगा। राजघाट, काशी को शुल्क न भेजा जाय।

(२) सदस्यों को तीन-चौथाई मूल्य में साहित्य मिलेगा। १० रुपये में कुल मिला कर १३।-) का साहित्य प्राप्त होगा, जो लगभग तीन हजार पृष्ठों का होगा। सदस्यों को किताब देने पर भंडार अपने पासवाली रसीद पर सदस्यों के हस्ताक्षर लेता रहेगा, ताकि सदस्यों को पुस्तकें ठीक से मिलती रहें।

(३) इस योजना में सेट नं० १ और नं० २ से भिन्न, सर्व-सेवा-संघ से प्रकाशित नयी पुस्तकें रहेंगी, पुस्तकें जैसे-जैसे प्रकाशित होती रहेंगी सम्बद्ध भंडारों से उपलब्ध हो सकेंगी। १॥) मूल्य तक की हर पुस्तक योजना में दी जायगी। १॥) रुपये से ऊपर मूल्य की पुस्तक योजना के अन्तर्गत नहीं रहेगी। टेकनिकल, शास्त्रीय तथा हिन्दी के अलावा अन्य भाषाओं की पुस्तकें भी शामिल नहीं रहेंगी।

(४) प्रमाणित साहित्य-भंडारों के पास सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन की ओर से एक तिपानी रसीद-बुक रहेगी और सदस्य बनाने का अधिकृत प्रमाण-पत्र रहेगा। शुल्क जमा करने पर रसीद की एक प्रति सदस्य को दी जायगी और एक प्रति प्रकाशन-दफ्तर, काशी में पहुँचती रहेगी, वह रसीद ही सदस्यता-फॉर्म समझा जायगा। अलग से कोई फॉर्म नहीं रहेगा।

(५) बीस या अधिक सदस्य एकसाथ बनना चाहेंगे, तो उन्हें काशी से सदस्य बनाया जा सकेगा। उनका शुल्क एकसाथ काशी आना चाहिए। उन्हें एक साथ ही साहित्य किसी भी रेलवे-स्टेशन पहुँचा दिया जा सकेगा। फुटकर सदस्य काशी से नहीं बनाये जायेंगे।

सर्व-सेवा-संघ प्रकाशन, राजघाट, काशी —संचालक

अभी और ५० ग्रामदान तमिलनाडु प्रदेश में मिले, जिनमें से ४३ ग्राम मदुराई जिले के हैं। —तार से

विषय-सूची

क्रम	विषय	लेखक	पृष्ठ
१.	ग्राम-समाज बनाने का साधन:ग्रामदान	विनोबा	१
२.	सेवकों को आवाहन	,,	२
३.	तंत्र-मुक्ति किसलिए ?	लक्ष्मीनारायण भारतीय	३
४.	द्वितीय पंच-वर्षीय योजना में पशु-पालन	मोहनलाल सक्सेना	४
५.	सब पक्षों की सरकार बने	विनोबा	५
६.	हर परिवार से एक कार्यकर्ता	,,	६
७.	पंचामृत	—	७
८.	तमिलनाड की क्रांति-यात्रा से–	निर्मला देशपांडे	११
९.	भूदान-आंदोलन के बढ़ते चरण, संवाद-सूचनाएँ	—	१२

सिद्धराज ढड्ढा, सहमंत्री अ० भा० सर्व-सेवा-संघ द्वारा भागव-भूषण प्रेस, वाराणसी में मुद्रित और प्रकाशित। पता : पोस्ट बॉक्स नं० ४१, राजघाट, काशी।

www.vinoba.in